सदा-ए-लब्बैक

एम.ए.कमाल

AL-NAZRAH PUBLICATION
University Circle, Aligarh

मिना टेंट सिटी

मस्जिद–ए–ख़ैफ (मिना)

सदा-ए-लब्बैक

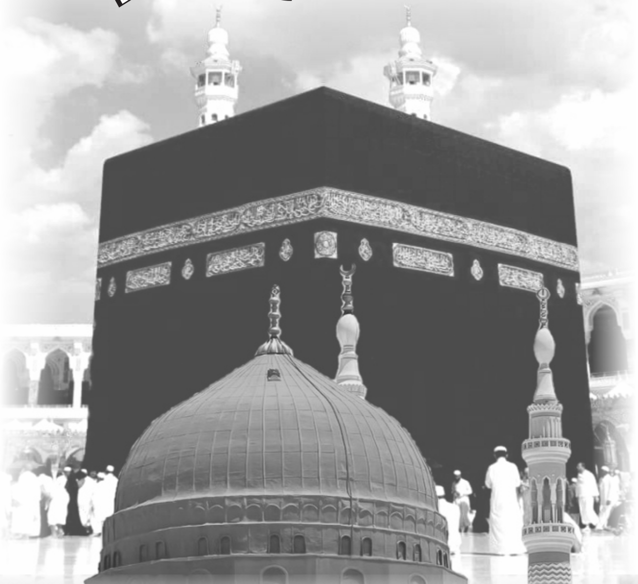

एम. ए. कमाल

RAYEE BOOK DEPOT

KATRA ALLAHABAD (PRAYGRAJ) Email- makamaltc@gmail.com

नाम किताब	:	सदा–ए–लब्बैक
मुसन्निफ़	:	एम0 ए0 कमाल
सन इशाअ़त	:	मार्च 2026
सफ़ह़ात	:	96
अ़दद	:	500
क़ीमत	:	100 रुपये
ISBN	:	
प्रिन्टिग	:	मकतबा एहसान, लखनऊ

किताब के लिये राबता करें :

- **RAYEE BOOK DEPOT,** Katra Allahabad (Prayagraj), Mob. 76685 49370, Email- makamaltc@gmail.com
- **MAKTABA AHSAN**, Lucknow, Mob. : 9335982413
- **AL-NAZRAH PUBLICATION,** University Circle, Aligarh, Mob. : 9557038250

इंतसाब

(Dedication)

‘‘उन मासूम निगाहों के नाम जो ग़ज़ा के मलबे में दबी हैं, मगर जिनमें उम्मीद का नूर बाक़ी है।’’

‘‘उन माँओं के नाम – जिन्होंने अपने लाडलों को खुदा के सुपुर्द किया
और

‘अल्ह़म्दुलिल्लाह’

कहा।’’

एक अर्ज़–ए–मुसन्निफ़

मैं एक सौदाबाज़ी भी कर रहा हूँ और इस पर माज़रत–ख़्वाह भी हूँ। मैं अपनी इस नाकि़स सी तह़रीर और चंद लफ़्ज़ों की काविश को अल्लाह की बारगाह में पेश करके, अपने वालिदैन के लिए बख़्शिश और बुलंदी–ए–दरजात का सवाल करता हूँ। मेरा ये कलम उनकी परवरिश का क़र्ज़ तो अदा नहीं कर सकता, मगर उनकी रूह के ईसाल–ए–सवाब के लिए एक छोटा सा तोह़फ़ा ज़रूर है।

या अल्लाह! उनकी कब्रों को जन्नत के बागों में से एक बाग बना दे, उनकी लग़्ज़िशों को दरगुज़र फ़रमा और उन्हें जन्नतुल फ़िरदौस में आला मुकाम अता कर। जितने भी हाथ इस सफ़रनामे को पढ़कर मज़लूमों और मेरे वालिदैन के लिए उठें, उन सबको अपनी बारगाह में मकबूल फ़रमा।

आमीन, सुम्मा आमीन।

फ़ेहरिस्त

1—	अपनी बात (Author's Note)	9
	किताब का मक़सद	10
	एक पैग़ाम	10
2—	लब्बैक और पहली पुकार	12
	मदीना की हाज़िरी : हज की रूहानी तकमील	13
	मोहसिन–ए–इंसानियत ﷺ और मोहब्बत का तक़ाज़ा	14
	1. अमीन और सादिक़ : दुश्मन की गवाही	15
	2. फतह–ए–मक्का : माफी की अ़ज़ीम मिसाल	15
	3. मसावात (Equality) : ह़ज़रत बिलाल (रजि.) का मक़ाम	15
	4. जानवरों और दरख़्तों पर शफ़क़त	16
	5. गरीबों और पड़ोसियों के हुक़ूक़	16
3—	दरे–रसूल ﷺ पर एक मुजरिम की हाज़िरी	17
	नदामत से शफ़ाअ़त तक – उम्मीद का किनारा	18
	रियाजुल–जन्नाह – ज़मीन पर जन्नत का टुकड़ा	19
	गुम्बद–ए–ख़ज़रा के साये में–जन्नत का एहसास	20
	मस्जिद–ए–नबवी की रूहानी खुसूसियत	21
	मदीना मुनव्वरा के एहम ज़ियारत के मकाम	22
	मस्जिद–ए–नबवी के पास की अहम ज़ियारतें	22
	1. जन्नत–उल–बक़ी (Jannat-ul-Baqi)	23
	2. मस्जिद–ए–गमामा (Masjid-e-Ghamama)	23
	3. मस्जिद–ए–अबू बक्र और मस्जिद–ए–अली (रज़ि0)	23
	4. सक़ीफा बनी साएदा (Saqifa Bani Sa'eda)	24
	5. मस्जिद–ए–इजाबा (Masjid-e-Ijaba)	24
	मदीना के अतराफ़ के तक़द्दुस मुक़ामात	24
	अतराफ़ की ज़ियारतें (बस का सफ़र) :	24
	1. मस्जिद–ए–कुबा (Masjid-e-Quba)	25
	2. मस्जिद–ए–क़िबलतैन और फ़लस्तीन का रब्त	25
	3. मैदान–ए–उहुद और सुहदा–ए–उहुद (Mount Uhud)	26

4. मस्जिद–ए–जुमुआ (Masjid-e-Jumu'ah) 26
5. सबा मसाजिद (Sab'a Masajid - Seven Mosques) 26
मैदान–ए–बद्र की ज़ियारत 27
एक अहम मश्वरा और मालूमात : 27
मैदान–ए–बद्र : जहाँ फ़रिश्ते ज़मीन पर उतरे 27
1. लश्कर का मुवाजना (Comparison) 28
2. 'कुएँ' और 'पानी' की हिकमत 28
3. 'अरीश' और नबी (सल्ल0) की वो बेमिसाल दुआ 28
4. कुदरती मदद और बारिश 29
5. जंग का आगाज और फ़रिश्तों का नुजूल 29
6. जंग का नतीजा 29
मुसन्निफ़ का मुशाहिदा (Author's Note) : 30
4– मज़लूमियत का लिबासः मेरा फ़लस्तीनी किफ़ाया और उम्मत का दर्द 31
5– मदीना का एक यादगार और पुर–दर्द वाक़्या 32
वाक़्ये की रूहानी और जज़्बाती गहराईः 32
हुजूर ﷺ की बारगाह में फरियाद : 33
मदीना से विदाई–जुदाई और रूहानी सफ़र का अगला पड़ाव 33
6– बैतुल्लाह की पहली झलक–दीवानगी और रूहानियत 35
तवाफ़ और सई – तकलीफ़ में इबादत का सुकून 36
तवाफ़ की रूहानी हकीकत और तारीख़ 37
तवाफ़ की खास बातेंः 39
काबा शरीफ के अहम हिस्से 39
सई की तारीख़ –हज़रत हाजरा का सब्र 40
सई की अहमियत (हज में सबक़) : 42
मक्का मुकर्रमा की अहम ज़ियारतें (Holy Sites of Makkah) 42
1. जबल–ए–नूर और गार–ए–हिरा (Jabal-e-Noor & Ghar-e-Hira) 42
2. जबल–ए–सौर और गार–ए–सौर (Jabal-e-Thawr) 43
3. मैदान–ए–अ़राफ़ात और जबल–ए–रहमत (Mount Arafat) 43
4. मुज़दलिफ़ा और मिना (Muzdalifah & Mina) 43
5. जन्नत–उल–मुअल्ला (Jannat-ul-Mu'alla) 43
6. मौलिद–उन–नबी (Place of Birth) 44
मक्का की सबसे करीबी मीक़ात : मस्जिद–ए–आयशा (तनईम) 44
तारीख़ी अहमियतः 44
वहाँ पहुँचने का आसान और सस्ता तरीका (Practical Guide): 44

मस्जिद–ए–जीराना (Ji'rana) : एक और रूहानी मुकाम 45
सफ़र का इख़्तिताम 45
ताएफ का सफ़र : सब्र और इस्तकामत की दास्तान 46
सफ़र की सहूलियत और किराया : 46
ताएफ के अहम मुक़ामात 46
मस्जिद–ए–अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि0) : 46
अंगूर के बाग : 46
मस्जिद–ए–अद्दास : 47
मस्जिद–ए–कूँहः 47
एक मुफीद मशवरा : 47
मस्जिद अर्राजी– जदीद इस्लामी तर्ज–ए–तामीर का शाहकार 48
हज–ए–तमत्तो – सुकून और सब्र का दर्मियानी वक़्फ़ा 49

7– कुरआन की गवाही – सूरह अल–मायदा (आयत 51) और मेरी शिकायत 50

8– इरादे की ताकत – वह एक पैर वाला मुसाफ़िर और मेरा टूटा हुआ वहम 52

9– दहलीज और दुआ–मस्जिद–अल–राजी और उस देहाती का वाक़िआ 54

10– असल सफ़र–ए–हज–मिना की रवानगी और दीवानगी 56
मिना की दीवानगी और ख़ेमों की हक़ीक़त 57
मिना का टेंट – इबादत, कशमकश और सब्र 57
मिना – दुनिया की अज़ीम तरीन ख़ेमा–बस्ती (Tent City) 58
मस्जिद अल–ख़ैफ़ – अम्बिया की मस्जिद 60
अ़राफ़ात की तरफ़ – रूहानी सफ़र का सबसे बड़ा पड़ाव 61

11– अ़राफ़ात की सिसकियाँ ग़ज़ा के मज़लूमों के लिए उठी एक फरियाद 63
मस्जिद–ए–निमराह की तरफ़ – एक यादगार सफ़र 63
मस्जिद–ए–निमराह – अ़राफ़ात का रूहानी मरकज़ 64
मस्जिद–ए–निमराह में तौहीद का समाँ और रूहानी कैफ़ियत 65
अ़राफ़ात की दुपहरी – हकीकत और बेबसी 66
मैदान–ए–अ़राफ़ात – खुत्बा और हकीकत 67
इस लम्हे की कुछ गहरी बातें : 67
अ़राफ़ात की दुआएँ – दिल की गहराइयों से 68

अ़राफ़ात से रवानगी – मुजदलिफ़ा की तरफ़ 70
मुजदलिफा की मुक़द्दस रात – खुले आसमान के नीचे 70
मस्जिद–ए–मशअर अल–हराम – मुज़दलिफ़ा की बरकत 71
कंकड़ियाँ चुनना – शैतान के ख़िलाफ़ तैयारी 73
मिना की तरफ़ पैदल सफ़र – सब्र और जज़्बा 74
12– जमरात का सफ़र –सफेद लिबास, सफेद उम्मीदें 75
जमरात – शैतान की रुसवाई और रजा–ए–इलाही 76
अ़ज़ीज़िया वापसी – सब्र का इम्तिहान 77
मिना में चहल–क़दमी – अल्लाह का रिज़्क़ 78
हज कमेटी के इंतजाम और हकीकत 80
13– तवाफ–ए–ज़ियारत – ह़ज का सबसे अहम रुक्न 82
मस्जिद–ए–ख़ैफ़ में इ़बादत और दुआ 83
ह़ज की तकमील – रब की रज़ा और सुकून 84
14– विदा की घड़ियाँ और मुड़–मुड़ कर देखता वह दिल 87
15– कबूलियत की गूँज और ठंडी हवा का झोंका 88
16– कुछ मशवरे मेरी निगाह में : 90
एक अहम मुशाहिदाः 91
इ़बादत की रूह और हमारी बे–सब्री 92
हजः इ़बादत या गुनाहों पर पर्दा? एक कड़वा सचः 93
सफ़र की हिकमत : इ़बादत या सामान का बोझ? 94
मेरे तजुर्बे का एक मशवरा : 94
मेरी राय में सही तरीका : 94
एक आख़िरी बात – 95

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा रहीम बड़ा ही मेहरबान है।

1- अपनी बात (Author's Note)

हज का सफ़र सिर्फ ज़ाहिरी अरकान और इबादतों का मजमुआ नहीं है, बल्कि यह उम्मत–ए–मुस्लिमा के इत्तेहाद और बाहमी हमदर्दी का सबसे बड़ा मज़हर है। मेरा हज 2025 का यह सफ़र उस दौर में हो रहा था, जब दुनिया की सबसे मज़लूम कौम ग़ज़ा के शहरी अपने वजूद की जंग लड़ रहे थे। मेरा यह हज का सफ़र महज़ एक इनफ़िरादी इबादत नहीं रहा, बल्कि यह उम्मत की बेबसी, उनकी सिसकियों और फिर उनके अटूट इत्तेहाद का जीता–जागता गवाह बन गया। सफ़र–ए–हज के दौरान जहाँ रूहानी सुकून था, वहीं फ़लस्तीनी भाइयों की बेबसी का गम दिल को मुसलसल कचोटता रहा।

तारीफ़ के क़ाबिल तो ग़ज़ा के वे पच्चीस लाख ग़यूर फ़लस्तीनी हैं, जो अपनी जानों का नज़राना पेश करके बैतुल–मुक़द्दस की बक़ा (survival) की जंग लड़ रहे हैं। दुनिया भर के आम मुसलमानों के दिलों में तो अपने फ़लस्तीनी भाइयों के लिए बे–पनाह हमदर्दी है।

यह गवाही थी उस दर्द की, जो आज पूरी उम्मत महसूस कर रही है। जब मैं मक्का की तपिश में तवाफ़ कर रहा था या मिना के ख़ेमों में बैठा था, मेरा दिल बार–बार एक ही सवाल पूछता था

‘‘क्या मेरे ये अरकान-ए-हज रब्ब-ए-कदीर की बारगाह में मक़बूल होंगे, जबकि मज़लूम फलस्तीनियों पर ज़ुल्म के शोले बरस रहे हैं और हम

बेबस तमाशाई बने हुए हैं?"

यह किताब उन्हीं बेचैनियों, मदीना की उस ठंडी हवा और अ़राफ़ात के मैदान में मांगी गई उन दुआ़ओं का मजमुआ़ है जो काग़ज़ों पर नहीं, बल्कि रूह़ पर नक़्श हो गई थीं।

किताब का मक़सद

यह सफ़रनामा महज़ एक 'हज के मुसाफ़िर' के जज़्बात और उसकी रूहानी कैफ़ियत का आईना है। मैंने कोशिश की है कि इस तह़रीर को मसलकी पेचीदगियों और फ़िक़्ही बहसों से पूरी तरह दूर रखा जाए। **लिहाज़ा, तमाम पढ़ने वालों से गुजारिश है कि हज के मसाइल, इ़बादत के सही अहकाम और फ़िक़्ही बारीकियों को समझने के लिए अपने-अपने मोतबर 'उलेमा-ए-किराम' से रुजू करें या मुस्तनद किताबों का सहारा लें।**

एक पैग़ाम

इस मुख़्तसर सफ़रनामे को लिखने का मेरा मक़सद अपने दिल की उस तड़प को बयान करना है, जो आज भी मेरे अंदर एक अ़जीब सी बेचैनी पैदा कर रही है। यह महज़ अल्फ़ाज़ नहीं, बल्कि वह अहसास हैं जो हरम की गलियों और मिना के मैदानों में मेरी रूह ने महसूस किए।

इस सफ़रनामे का एक मक़सद यह भी है कि मुस्तकबिल के हज मुसाफ़िरों को उन तमाम दुश्वारियों और पेचीदगियों से आगाह कर सकूँ, जिनका सामना मैंने अपने इस सफ़र में किया। अल्लाह की राह के इन मुसाफ़िरों के लिए मेरा यह नाक़िस तजुर्बा एक ऐसी रौशनी साबित हो सके, जिससे उनका सफ़र आसान, महफ़ूज़ और ज़्यादा से ज़्यादा लुत्फ़–अंदोज़ हो सके।

अक्सर मालूमात की कमी की वजह से हाजी ह़ज के अरकान या वहाँ के इंतज़ामात में उलझकर रह जाते हैं और उस रूह़ानी सुकून से मह़रूम हो जाते हैं, जिसके लिए वे इतनी दूर का सफ़र तय करते हैं। अगर इस सफ़रनामे से किसी को अपने हज के सफ़र में कोई मदद मिल सके, तो मेरा लिखना बा–मक़सद होगा।

अल्लाह आप सबके सफ़रों को आसान, मुबारक और मक़बूल फरमाए। आमीन!

2- लब्बैक और पहली पुकार

28 अप्रैल की वह तारीख़ मेरे जहन में नक़्श है, जब हमारा सफ़र सीधे 'मदीनतुल मुनव्वरा' के लिए शुरू हुआ। दिल में एक अजीब सी हलचल थी। यूँ तो इंसान ज़िंदगी में कई सफ़र करता है, मगर यह सफ़र किसी शहर की तरफ़ नहीं, बल्कि अपनी रूह के मरकज की तरफ़ था।

घर की दहलीज पार करते ही दिल में जो कैफ़ियत पैदा हुई, उसे बयान करना मुमकिन ही नहीं है। यह ख़ुशी और डर का एक अजब मिला–जुला अहसास था। ख़ुशी इस बात की कि कायनात की सबसे मुक़द्दस हस्ती ﷺ के दर पर हाज़िरी होने जा रही है, और डर इस बात का कि क्या मैं गुनाहगार इस क़ाबिल हूँ?

घर की दहलीज छोड़ने से लेकर एयरपोर्ट और फ़्लाइट तक, 'लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक' की सदाओं के साथ मंजिल को तय करते रहे।

लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक	(मैं हाजिर हूँ, ऐ अल्लाह! मैं हाजिर हूँ)
लब्बैक ला शरीका लका लब्बैक	(मैं हाजिर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाजिर हूँ)
इन्नल हम्दा, वन ने'मता, लका वल मुल्क	(बेशक, तमाम तारीफें, तमाम नेमतें और पूरी बादशाहत तेरी ही है)
ला शरीका लक	(तेरा कोई शरीक नहीं है)

मेरी छोटी बेटी, जिसकी उम्र महज़ 10 साल थी, उसका अपनी माँ से लिपटना और उस जुदाई के अहसास से मेरी बेगम के चेहरे पर आने वाले जज़्बाती उतार–चढ़ाव को मैं साफ देख सकता था। एक तरफ़ ममता की वह टीस थी जो कलेजे को चीर रही थी, और दूसरी तरफ़ 'सफ़र–ए–हज' की वह उमंग जो

तमाम दुनियावी रिश्तों पर भारी पड़ रही थी।

पहले हमें मदीना में 8 दिन का क़याम करना था, हुज़ूर पाक ﷺ की बारगाह में 40 नमाजें अदा करनी थीं, मदीने से एहराम बांध कर और फिर मक्का पहुँचकर उमरा मुकम्मल करने के बाद एहराम खोलना था। असल ह़ज का एहराम तो बाद में 7/8 जिल–हिज्जा को दोबारा बांधना था। मदीना के उन 8 दिनों में, हर नमाज के साथ यह अहसास गहरा होता गया कि मैं उस दर पर हूँ जहाँ पूरी कायनात का सुकून सिमट आया है।

मदीना की हाज़िरी : ह़ज की रूहानी तकमील

यह सच है कि मनासिक–ए–हज के अरकान में मदीना मुनव्वरा की हाज़िरी शामिल नहीं, मगर क्या कोई हाजी अपने महबूब ﷺ की चौखट पर सर झुकाए बिना वतन वापस लौट सकता है? हरगिज नहीं! काबा अगर ईमान का मरकज है, तो मदीना उस ईमान की रूह है। ईमान तब तक मुकम्मल हो ही नहीं सकता जब तक अल्लाह के रसूल ﷺ की मोहब्बत दुनिया की हर चीज, यहाँ तक कि अपनी जान से भी बढ़कर न हो जाए।

लोग सवाल करते हैं कि यह क्या कशिश है कि इंसान अपना माल, जान और वक़्त सब कुछ उस जात–ए–बाबरकत पर कुर्बान करने को तैयार रहता है? इसका जवाब वही जान सकता है जिसने सुनहरी जालियों के सामने खड़े होकर उस ठंडी और मुअत्तर हवा को महसूस किया हो जो रूह को पाक कर देती है।

मक्का में हम 'रब' की बड़ाई का इक़रार करते हैं, तो मदीना में हम उस नबी का शुक्र अदा करते हैं जिनके सदक़े हमें खुदा की पहचान मिली। हाजी मक्का से गुनाहों की माफी लेकर

निकलता है और मदीना से जीने का सलीका और मोहब्बत का सलीका लेकर घर लौटता है। वाक़ई, मदीना की हाज़िरी के बिना सफ़र–ए–हज मुकम्मल तो हो जाता है, मगर रूहानी तौर पर अधूरा सा रहता है।

मोहसिन-ए-इंसानियत ﷺ और मोहब्बत का तक़ाज़ा

अल्लाह के रसूल ﷺ का मुक़ाम और उनसे मोहब्बत का तक़ाजा महज़ लफ़्ज़ों का मोहताज नहीं। आप ﷺ की पूरी ज़िंदगी इंसानियत पर शफ़क़त और रहमत की वह मिसाल है जिसकी नजीर कायनात में नहीं मिलती। आप ﷺ उस दौर में तशरीफ लाए जब मक्का की ज़मीन अपनी ही बेटियों को जिंदा दफन होते देख रही थी। आपने औरतों को समाज में इज़्ज़त का मकाम दिया, यतीमों के सर पर शफक़त का साया रखा और काबा को इंसानों के हाथों बनाए झूठे खुदाओं से पाक करके इंसानियत की अजमत को बहाल किया।

आप ﷺ की राहें फूलों की सेज न थीं। शेब–ए–अबी तालिब की वह सख़्तियाँ और फाक़े हों, या ताइफ के औबाश लड़कों का वह जुल्म जिसने 'रहमतुल–लिल–आलमीन' के जिस्म–ए–अतहर को लहू–लुहान कर दिया, मगर कुर्बान जाइए आपकी रहमत पर! जब पहाड़ों के फ़रिश्ते ने ताइफ की बस्ती को दो पहाड़ों के दर्मियान पीस देने की इजाज़त माँगी, तो 'मोहसिन–ए–इंसानियत' ने मना कर दिया। आपने फ़रमाया : 'नहीं, मुझे उम्मीद है कि इनकी नस्लें हिदायत पाएँगी।'

वाक़ई, आप ﷺ की सीरत का हर पन्ना हमें यह सिखाता है कि इस्लाम तलवार से नहीं, बल्कि आपके बे–मिसाल अख़्लाक़ और बे–पनाह मोहब्बत से फैला है।

1. अमीन और सादिक़ : दुश्मन की गवाही

ऐलान–ए–नुबुव्वत से पहले ही मक्का के लोग आपको 'अमीन' (अमानतदार) और 'सादिक़' (सच्चा) कहते थे। ताज्जुब की बात यह है कि जब आप ﷺ ने हिज़रत फ़रमाई, तो उस वक़्त भी आपके पास उन लोगों की अमानतें रखी थीं जो आपकी जान के दुश्मन बने हुए थे। आपने हज़रत अली (रजि.) को रुकने का हुक्म दिया ताकि वह उन दुश्मनों की अमानतें लौटा सकें। यह सिखाता है कि इख़्तिलाफ़ अपनी जगह, लेकिन ईमानदारी पर कोई समझौता नहीं।

2. फतह–ए–मक्का : माफी की अज़ीम मिसाल

जब आप ﷺ दस हजार के लश्कर के साथ मक्का में दाख़िल हुए, तो वह शहर जहाँ से आपको पत्थर मारकर निकाला गया था, वह आज आपके क़दमों में था। लोग डर के मारे कांप रहे थे कि आज ख़ून का बदला लिया जाएगा। मगर आपने क्या फ़रमाया?

'आज तुम पर कोई इल्जाम नहीं, जाओ तुम सब आजाद हो।' यहाँ तक कि आपने अपने सबसे बड़े दुश्मन और हज़रत हमजा (रजि.) के कातिलों को भी माफ कर दिया। यह इंतिक़ाम (Revenge) पर रहमत की जीत का सबसे बड़ा वाक़िया है।

3. मसावात (Equality) : हज़रत बिलाल (रजि.) का मक़ाम

अरब के समाज में नस्ल और रंग का बहुत गुरूर था। आपने उस गुरूर को मिट्टी में मिला दिया। आपने एक हब्शी गुलाम (**हज़रत बिलाल रजि.**) को इस्लाम का पहला मुअज़्ज़िन

बनाया और काबा की छत पर खड़ा किया। यह दुनिया को पैग़ाम था कि अल्लाह के नज़दीक बड़ा वह है जिसका तक़्वा बड़ा है, न कि वह जिसका ख़ानदान या रंग गोरा है।

4. जानवरों और दरख़्तों पर शफ़क़त

आप ﷺ की रहमत सिर्फ़ इंसानों तक महदूद न थी। आपने भूखे ऊंटों को देख कर उनके मालिकों को डांटा, चिड़िया के बच्चों को घोंसले से निकालने पर नाराज़गी जताई और यहाँ तक फ़रमाया कि 'अगर क़यामत की दीवार सामने खड़ी हो और तुम्हारे हाथ में एक छोटा पौधा हो, तो उसे लगा देना।' यह आज के दौर के लिए **माहौलियात** (Environment) का सबसे बड़ा सबक है।

5. गरीबों और पड़ोसियों के हुक़ूक़

आपने फ़रमाया : 'वह मोमिन नहीं जो खुद पेट भर कर सोए और उसका पड़ोसी भूखा रहे।' आपने अपनी पूरी ज़िंदगी सादगी में गुजारी। अक्सर आपके घर में कई–कई दिनों तक चूल्हा नहीं जलता था, और आप ﷺ पेट पर पत्थर बांध कर खंदक खोदते थे, ताकि उम्मत को मेहनत और सब्र का सबक मिले। मदीना की हाज़िरी और हुजूर ﷺ के रोज़ा–ए–अतहर के सामने खड़े होकर यह अहसास होता है कि हम उस नबी के उम्मती हैं जिसने पत्थर खाकर भी दुआएं दीं। उनकी सीरत महज़ एक किताब नहीं, बल्कि अंधेरी रास्तों में भटकी हुई इंसानियत के लिए नूर का वह मीनार है, जिसकी रौशनी क़यामत तक मद्धम नहीं होगी।'

3- दरे-रसूल ﷺ पर एक मुजरिम की ह़ाज़िरी

29 अप्रैल की वह मुक़द्दस सुबह, जब मदीना की ठंडी हवाओं ने हमारा इस्तकबाल किया। जुहर की नमाज मस्जिद–ए–नबवी ﷺ में अदा करने की साआ़दत मिली। अब वह लम्हा था जब मुझे रोजा–ए–पाक ﷺ के सामने खड़ा होना था।

चला हूँ एक मुजरिम की तरह मैं जानिब-ए-तैबा
नज़र शर्मिंदा शर्मिंदा, बदन लरजीदा लरजीदा

मगर दिल का हाल अजीब था। जैसे–जैसे सुनहरी जालियों के क़रीब पहुँच रहा था, क़दमों की ज़मीन खिसक रही थी। हक़ीक़त तो यह थी कि मैं कहीं से भी रह़मतुल–आलमीन ﷺ को अपनी शक्ल दिखाने के क़ाबिल न था। मैं गुनाहों के बोझ से लदा हुआ, नदामत (पछतावे) के आँसुओं और शर्मिंदगी में पूरी तरह सराबोर था।

जब मैंने रोजा–ए–पाक की जानिब मुँह करके काँपते लबों से सलाम पेश किया, तो रूह के अंदर एक ऐसी चोट लगी जिसने मुझे अंदर तक हिला दिया। उस वक्त मेरा ज़मीर (Conscience) जैसे चीख़कर कह रहा था – एक ऐसी आवाज जो शायद हुज़ूर ﷺ की रह़मत के आईने में मेरी अपनी हकीक़त थी:

"तुम यहाँ किस मुँह से आए हो? तुम तो अपने नफ़्स के परस्तार हो! तुम्हारे दिलों में मुनाफ़िक़त (Hypocrisy) है। यहाँ आकर तो तुम नदामत का ढोंग कर रहे हो, मगर क्या यक़ीन है कि यहाँ से बाहर निकलते ही तुम फिर वही सब नहीं करोगे जो अब तक करते आए हो? क्या तुम्हारी यह तौबा सिर्फ़ इन चंद लम्हों के लिए है?"

वह एहसास इतना **सख़्त** था कि ऐसा लगा मानो मेरी रूह नंगी हो गई हो। वह 'मरकज–ए–तवज्जो' जो अब तक सिर्फ़ एक ज़ियारत थी, अब मेरे अपने नफ्स के साथ एक जंग बन चुकी थी। उस वक़्त मुझे अपनी मुनाफ़िक़त का एहसास हुआ – कि हम कैसे दुनिया के मफ़ादात की ख़ातिर अपने ईमान का सौदा करते हैं और फिर रहमत के दर पर आकर आँसू बहाते हैं।

उस दिन मदीना में मैंने जाना कि सच्चा सलाम वह नहीं जो ज़बान से अदा हो, बल्कि वह है जो इंसान की पूरी ज़िंदगी बदल दे। वह शर्मिंदगी अब मेरी बक़ाया ज़िंदगी का सबसे बड़ा सबक़ बन चुकी थी।

नदामत से शफ़ाअत तक - उम्मीद का किनारा

जब ज़मीर ने 'मुनाफ़िक़त' का आईना दिखाया और मैं अपनी ही नज़रों में गिर गया, तब उसी चौखट से एक मीठी सी ठंडी हवा का झोंका आया। ऐसा लगा जैसे रहमत–ए–दो–आलम ﷺ की तरफ़ से एक ख़ामोश दिलासा मिला हो–कि 'माना तुम गुनहगार हो, माना कि नदामत अधूरी है, मगर तुम आए तो आख़िर मेरे ही दर पर हो!

मैंने महसूस किया कि मेरी मुनाफ़िक़त पर आपकी रहमत भारी है। अगर आप ﷺ जैसा शफ़ीक़ नबी हमारी सिफ़ारिश न करेगा, तो हम जैसे गुनहगारों का ठिकाना कहाँ होगा? उस दिन मेरी दुआओं का 'मरकज–ए–तवज्जो' बदल गया। अब मैं सिर्फ़ अपनी ज़रूरतें नहीं माँग रहा था, बल्कि यह इल्तिजा कर रहा था:

ऐ अल्लाह के रसूल ﷺ! मेरी इस टूटी–फूटी हाज़िरी को क़ुबूल फ़रमाएं। मेरी मुनाफ़िक़त को इख़लास (सच्चाई) में बदल

दें। मैं जैसा भी हूँ, आपका उम्मती हूँ। रोज–ए–महशर (क़यामत के दिन) जब सब अपनी जान बचाने में लगे होंगे, तब अपनी 'शफ़ाअ़त' की चादर में इस गुनहगार को भी जगह अता फ़रमाना।

उस वक्त रोते–रोते दिल को एक अ़जब सा इत्मीनान मिला। ऐसा लगा जैसे रूह पर जमी गर्द धुल गई हो। वह 'चोट' जो दिल पर लगी थी, अब वह एक 'मरहम' बन चुकी थी। मैं वहां से एक मुजरिम बनकर गया था, मगर लौटते वक्त हुज़ूर ﷺ की शफ़ाअ़त की उम्मीद ने मुझे एक नया हौसला अता किया था – कि अब लौटकर फिर वही सब नहीं करना, जो अब तक करता आया हूँ।"

रियाज़ुल-जन्नाह - ज़मीन पर जन्नत का टुकड़ा

रियाजुल–जन्नाह की ज़ियारत – जो रूह को सुकून देने वाला जन्नत का टुकड़ा है। तकनीकी दौर में अब वहाँ सीधे एंट्री नहीं मिला करती है। हमें 'नुसुक' (Nusuk) ऐप से अपॉइंटमेंट लेकर जाना होता है। यह नियम भीड़ को क़ाबू करने के लिए है। मुझे इत्तेफाक़ से अगले दिन का ही अपॉइंटमेंट मिल गया। शफ़ाअ़त की उस उम्मीद ने मेरे अंदर एक अजीब सी तड़प पैदा कर दी थी। अब मेरी रूह तड़प रही थी कि कब मुझे उस मक़ाम पर सजदा–नसीब हो, जिसे अल्लाह के नबी ﷺ ने 'जन्नत की क्यारियों में से एक क्यारी' फ़रमाया है। वह रियाजुल–जन्नाह था – जहाँ का **हरा कालीन** (Carpet) दुनिया की हर मख़मल से ज़्यादा मुक़द्दस और कीमती है। मदीना की उन पुर–सुकून गलियों से गुजरते हुए, जहाँ कभी रह़मत–ए–आलम ﷺ के क़दम पड़े थे, मेरा दिल दहल रहा था। आख़िरकार, वह घड़ी आई जब

मैं उस **'सबज कालीन'** पर खड़ा था। उस वक्त मुझे अपनी वह पुरानी 'मुनाफ़िक़त' और 'नदामत' फिर याद आई, मगर इस बार उनमें डर नहीं, बल्कि एक 'हया' (Modesty) थी।

मैंने जब वहाँ सजदा किया, तो ऐसा लगा जैसे वक़्त ठहर गया हो। वह सजदा नहीं था, बल्कि मेरे वजूद की पूरी तड़प का ज़मीन पर बिछ जाना था। रियाजुल–जन्नाह की उस छोटी सी जगह पर, जहाँ हजारों लोग एक लम्हे के लिए तरसते हैं। वहाँ माँगी गई हर दुआ का 'मरकज–ए–तवज्जो' अब बदल चुका था। अब मैं दुनिया की दौलत या खुशियाँ नहीं माँग रहा था, बल्कि उस 'नूरे–ईमान' की भीख माँग रहा था जो मुझे दोबारा उन अंधेरों में जाने से बचा ले, जिनसे मैं निकलकर आया था।

रियाजुल–जन्नाह से बाहर निकलते वक्त, मदीना की हवाएँ जैसे मेरे कान में कह रही थीं कि गुनाहों से तौबा करने वाला ऐसा है जैसे उसने कभी गुनाह किया ही न हो'। वह 'जन्नत का टुकड़ा' अब मेरे दिल के अंदर बस चुका था, और मुझे यक़ीन हो गया था कि इस सफ़र की रूह मुझे एक नया इंसान बनाकर ही दम लेगी। हालाँकि, 'एक सफ़र में सिर्फ़ एक बार ही' रियाजुल–जन्नाह जाने की इजाजत होती है, जो दिल को मलाल में डाल देता है कि काश थोड़ी देर और वहाँ रुक पाते। मगर, अल्लाह का करम देखिए! दो दिन बाद, मुझे 'हज कमेटी' के ग्रुप के साथ दोबारा रियाजुल–जन्नाह जाने की साआ़दत नसीब हुई।

गुम्बद-ए-ख़ज़रा के साये में-जन्नत का एहसास

मदीना मुनव्वरा में मेरे सफ़र का सबसे हसीन और रूहानी लम्हा वह था, जब मैं और मेरी अहलिया मगरिब की नमाज के

बाद गुम्बद–ए–ख़ज़रा के सामने मस्जिद के सहन में बैठ जाया करते थे।वहाँ चलने वाली ठंडी रूहानी हवाएँ जैसे रूह को सुकून का पैग़ाम देती थीं। वह एहसास–वह सुकून– सिर्फ़ वही समझ सकता है जो इस कैफ़ियत से गुजर चुका हो। **यह ज़िंदगी की सबसे हसीन शामें थीं।**

सच तो यह है कि दुनिया के किसी भी कोने में–चाहे वह समंदर के किनारे गुरूब–ए–आफताब (Sunset) का मंज़र हो, या सहरा (Desert) की ख़ामोशी, चाहे गुलमर्ग की बर्फीली वादियों में बिछी मख़मली बर्फ की चादर हो, या दुनिया का सबसे महँगा टूरिस्ट डेस्टिनेशन जहाँ लोग लाखों ख़र्च करके जाते हैं–इनमें से किसी भी मंज़र का मुक़ाबला उस सुकून से नहीं हो सकता।

वह दुनिया में जन्नत के एहसास का मंज़र था। जब गुम्बद–ए–ख़ज़रा की झलक आँखों के सामने होती थी और रूह नबी ﷺ की मुहब्बत में डूबी होती थी, तो दुनिया की हर दौलत और हर मंज़र फीका नज़र आता था। वह एहसास था – **"कि अब यहीं बस जाना है, और कहीं नहीं जाना।"**

मस्जिद-ए-नबवी की रूहानी खुसूसियत

- **सुनहरी जालियाँ (रौज़ा-ए-रसूल ﷺ):**
  - खास बात : जहाँ अल्लाह के महबूब ﷺ आराम फ़रमा रहे हैं। वह मक़ाम जहाँ कायनात की सबसे अ़ज़ीम हस्ती का जमीनी सुकून है। यहाँ की हवाओं में एक अजीब सी खामोशी और रूहानी ठंडक है, जो सीधे दिल को छूती है।
- **जन्नती बहारें (छतरियाँ और फर्श):**

- ख़ास बात : मस्जिद का सहन और उसकी अनूठी छतरियाँ जो गर्मी में छाया और रूहानियत देती हैं। मदीना की धूप में भी यहाँ का फर्श ठंडा रहता है, जो सुकून देता है। यहाँ का हर नज़ारा – दिन की रौनक़ से लेकर रात की इबादत तक–इंसान को दुनिया से बेखबर कर देता है।

- **सुकून-ए-क़ल्ब (दिल का सुकून):**
  - ख़ास बात : मस्जिद में दाख़िल होते ही हर क़िस्म की फ़िक्र और परेशानी ख़त्म हो जाती है। यह दुनिया की इकलौती ऐसी जगह है जहाँ इंसान न कुछ माँगता है, न कुछ चाहता है, सिर्फ़ उस सुकून को महसूस करता है जो हुजूर ﷺ की मुहब्बत से मिलता है।

मदीना मुनव्वरा के एहम ज़ियारत के मकाम

मस्जिद–ए–नबवी (सल्ल0) के बिल्कुल अतराफ़ में जो मुक़द्दस और तारीख़ी मुक़ामात हैं, उनके लिए आपको किसी सवारी की ज़रूरत नहीं है। आप पाय–पैदल (On Foot) ही इन जगहों की ज़ियारत कर सकते हैं :

- जन्नत–उल–बक़ी (मस्जिद के बिल्कुल बराबर में)
- मस्जिद-ए-गमामा, मस्जिद-ए-अबूबक्र और मस्जिद-ए-अली (बाबे-सलाम की जानिब)
- सक़ीफ़ा बनी साएदा (मस्जिद के शिमाली–मगरिबी कोने के पास)

मस्जिद-ए-नबवी के पास की अहम ज़ियारतें

मस्जिद–ए–नबवी (सल्ल0) के बिल्कुल क़रीब कई ऐसे

मुक़ामात हैं जो तारीख़–ए–इस्लाम के गवाह हैं :

1. जन्नत-उल-बक़ी (Jannat-ul-Baqi)

ये मदीना का वो तारीख़ी क़ब्रिस्तान है जो मस्जिद–ए–नबवी के बिल्कुल मशरिक़ी (East) जानिब वाक़य है।

- **अहमियत :** यहाँ ह़ज़रत उस्मान–ए–गनी (रज़ि0), अहल–ए–बयत (नबी के घर वाले), हुजूर (सल्ल0) की अजवाज–ए–मुतहरात (पवित्र पत्नियाँ) और तक़रीबन दस हजार सहाबा–ए–किराम मदफून हैं।
- **मश्वरा :** यहाँ आम तौर पर फ़र्ज़ और असर की नमाज के बाद जायरीन के लिए दरवाजा खोला जाता है। यहाँ खड़े होकर सलाम पेश करना और अपनी मग्फिरत की दुआ करना रूह को सुकून देता है।

2. मस्जिद-ए-गमामा (Masjid-e-Ghamama)

मस्जिद–ए–नबवी के बाब–ए–सलाम की जानिब थोड़े फासले पर ये मस्जिद वाक़य है।

- **अहमियत :** 'गमामा' के मानी 'बादल' के हैं। रिवायत है कि यहाँ नबी–ए–करीम (सल्ल0) ने नमाज–ए–इस्तिसक़ा (बारिश की दुआ) पढ़ी थी, जिसके बाद फौरन बादल छा गए और बारिश हुई।

3. मस्जिद-ए-अबू बक्र और मस्जिद-ए-अली (रज़ि०)

मस्जिद–ए–गमामा के बिल्कुल पास ही ये दोनों छोटी मसाजिद मौजूद हैं।

- **पसे-मंजर :** ये उन मुक़ामात पर तामीर की गई हैं जहाँ इन अ़ज़ीम सहाबा ने ईद की नमाज पढ़ाई थी या जहाँ उनके मकान हुआ करते थे। ये जगहें उस दौर की

सादगी और तक़्वे की याद दिलाती हैं।

4. सक़ीफा बनी साएदा (Saqifa Bani Sa'eda)

मस्जिद–ए–नबवी के शुमाल–मगरिब (North-West) कोने के पास एक खूबसूरत बाग है।

- **अहमियत :** ये वो तारीख़ी जगह है जहाँ नबी (सल्ल0) के विसाल के बाद सहाबा इकट्ठा हुए थे और ह़ज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि0) के हाथ पर बैअत (ख़िलाफ़त का इंतिख़ाब) हुई थी।

5. मस्जिद-ए-इजाबा (Masjid-e-Ijaba)

'इजाबा' (Ijaba) अरबी लफ़्ज़ है जिसका मतलब होता है 'दुआ का कुबूल होना' या 'जवाब मिलना'। इसीलिए इसे 'दुआ़ओं की कुबूलियत वाली मस्जिद' कहा जाता है।

मदीना के अतराफ़ के तक़द्दुस मुक़ामात

अतराफ़ की ज़ियारतें (बस का सफ़र) :

मदीना के बाहरी हिस्सों में वाक़य मुक़ामात जैसे मस्जिद–ए–कुबा, मस्जिद–ए–क़िबलतैन और उहुद का पहाड़ देखने के लिए आपको परेशान होने की ज़रूरत नहीं है।

- **सहूलियत :** ज़्यादातर होटलों के बाहर से ही सुबह फ़र्ज़ की नमाज के बाद बसें मिल जाती हैं।
- **किराया :** ये बसें महज़ 10 रियाल (या इसी के आस–पास) में आपको इन तमाम अहम जगहों की ज़ियारत करा देती हैं।
- **वक़्त का तालमेल :** इसका सबसे बड़ा फायदा ये है कि आप फ़र्ज़ की नमाज मस्जिद–ए–नबवी में अदा करके

निकलते हैं और जुहर की नमाज तक वापस हरम पहुँच जाते हैं। इससे आपकी कोई भी नमाज क़ज़ा नहीं होती।

मस्जिद–ए–नबवी के क़रीबी मुक़ामात के अलावा, मदीना के अतराफ़ में भी कई ऐसी जगहें हैं जहाँ इस्लाम की अ़ज़ीम तारीख़ रक़म हुई है :

1. मस्जिद-ए-कुबा (Masjid-e-Quba)

ये इस्लाम की पहली मस्जिद है, जो मदीना के जुनूबी (South) हिस्से में वाक़्य है।

- **अहमियत :** नबी–ए–करीम (सल्ल0) ने हिज़रत के वक़्त मदीना दाख़िल होने से पहले यहाँ क़ियाम फ़रमाया और अपने मुबारक हाथों से इसकी बुनियाद रखी।
- **फजीलत :** हुजूर (सल्ल0) का इरशाद है कि 'जो शख़्स अपने घर से वजू करके निकले और मस्जिद–ए–कुबा में दो रकात नमाज पढ़े, उसे एक उमरे का सवाब मिलता है।'

2. मस्जिद-ए-क़िबलतैन और फ़लस्तीन का रब्त

जब मैं मदीना की सरजमीन पर मस्जिद–ए–क़िबलतैन की चौखट पर खड़ा था, तो रूह एक अजीब कश्मकश से गुजर रही थी। यह वही मुक़द्दस जगह है जहाँ सदियों पहले नमाज के दौरान ही अल्लाह के हुक्म से मोमिनों के सजदों का रुख बदल दिया गया था।

लेकिन 2025 के इस सफ़र में, वहाँ खड़े होकर मेरा दिल चीख–चीख कर कह रहा था कि भले ही आज हमारे जिस्मों और सजदों का रुख खाना–ए–काबा की जानिब है, पर हमारी रूह का एक बड़ा हिस्सा आज भी बैतुल–मुक़द्दस (क़िबला–ए–अव्वल) की जंजीरों में जकड़ा हुआ है।

ग़ज़ा की सिसकियाँ और मलबों के बीच दी जाने वाली अजानें मुझे याद दिला रही थीं कि मस्जिद–ए–क़िबलतैन सिर्फ़ दो रुख़ों के मिलन की जगह नहीं, बल्कि इस बात की गवाह है कि उम्मत का रिश्ता फ़लस्तीन की उस पाक ज़मीन से कभी टूट नहीं सकता। हमारे माथे भले ही मक्का की ज़मीन पर टिके थे, मगर हमारे दिल ग़ज़ा के उन मज़लूमों के साथ धड़क रहे थे जो आज भी अपने वजूद और हमारे पहले क़िबले की हिफाजत के लिए 'फ़र्ज़–ए–किफाया' अदा कर रहे हैं।

3. मैदान-ए-उहुद और सुहदा-ए-उहुद (Mount Uhud)

ये मदीना के शुमाल (North) में एक अ़ज़ीम पहाड़ और मैदान है।

- अहमियत : यहाँ 'गजवा–ए–उहुद' (उहुद की जंग) हुई थी। यहाँ सय्यद–उश–शुहदा ह़ज़रत अमीर ह़मज़ा (रज़ि0) और दिगर सहाबा–ए–किराम के मजार मौजूद हैं।
- नबी (सल्ल0) का क़ौल : 'उहुद वो पहाड़ है जो हमसे मोहब्बत करता है और हम इससे मोहब्बत करते हैं।'

4. मस्जिद-ए-जुमुआ (Masjid-e-Jumu'ah)

मस्जिद–ए–कुबा के क़रीब ही वो मक़ाम है जहाँ नबी–ए–करीम (सल्ल0) ने मदीना हिज़रत के दौरान पहला 'जुमा' अदा फ़रमाया था।

5. सबा मसाजिद (Sab'a Masajid - Seven Mosques)

ये वो मुक़ाम है जहाँ 'गजवा–ए–ख़ंदक़' (जंग–ए–अह़ज़ाब) के वक़्त सहाबा के मोर्चे थे। यहाँ अब छोटी–छोटी मसाजिद बनी हुई हैं, जिनमें मस्जिद–ए–फतह सबसे अहम है।

मैदान-ए-बद्र की ज़ियारत

एक अहम मश्वरा और मालूमात :

इस्लाम की पहली जंग का अज़ीम मैदान 'बद्र', मदीना मुनव्वरा से तक़रीबन 150 किलोमीटर की दूरी दूरी पर वाक़य है। बहुत से मुसाफ़िर इस रूहानी और तारीख़ी मक़ाम की ज़ियारत की तमन्ना रखते हैं। इसके लिए मेरा जाती तजुर्बा ये है :

- **सवारी और किराया :** आपको अपने होटल के पास से ही सुबह फ़र्ज़ की नमाज के बाद बसें मिल जाएँगी। बद्र के इस मुकम्मल सफ़र के लिए आम तौर पर 40 से 50 रियाल का किराया लिया जाता है।
- **नमाजों का तालमेल :** आप जुहर की नमाज 'मस्जिद–ए–बद्र' (जो मैदान–ए–बद्र के बिल्कुल पास है) में अदा कर सकते हैं।
- **वापसी :** सफ़र की मुसाफत (distance) को देखते हुए, आप असर की नमाज तक वापस मदीना मुनव्वरा पहुँच जाते हैं।
- **वक़्त की क़द्र :** इस पूरे सफ़र में आपकी मस्जिद–ए–नबवी (सल्ल0) की सिर्फ़ एक नमाज (जुहर) छूटेगी, लेकिन उसके बदले आप उस अज़ीम मैदान और शुहदा–ए–बद्र के मजारात की ज़ियारत कर सकेंगे जहाँ हक़ और बातिल का पहला फैसला हुआ था।

मैदान-ए-बद्र : जहाँ फ़रिश्ते ज़मीन पर उतरे

हिज़रत का दूसरा साल : 17 रमजानुल–मुबारक

मदीना मुनव्वरा से लगभग 150 किलोमीटर दूर, रेत के टीलों के बीच घिरा 'बद्र' का मैदान उस दिन तारीख़ बनाने जा

रहा था। एक तरफ़ मक्का का गुरूर (अबू जहल का लश्कर) था और दूसरी तरफ़ अल्लाह के नबी (सल्ल0) की सादगी।

1. लश्कर का मुवाजना (Comparison)

- **मुशरिकीन-ए-मक्का** : 1000 का लश्कर, जो बेहतरीन घोड़ों, ऊंटों और हथियारों से लैस था। उनके साथ गाने वाली औरतें और शराब का जखीरा था ताकि वे अपनी ताक़त का जश्न मना सकें।
- **मुसलमान** : महज़ 313 जाँबाज। इनमें से ज़्यादातर के पास न तलवार थी, न ढाल। कुल 2 घोड़े और 70 ऊँट थे, जिन पर बारी–बारी सवार होकर वे मदीना से यहाँ पहुँचे थे।

2. 'कुएँ' और 'पानी' की हिकमत

जंग के मैदान में पानी की अहमियत सबसे ज़्यादा होती है। सहाबा ने अल्लाह के नबी (सल्ल0) के मश्वरे और ह़ज़रत हुबाब बिन मुन्ज़िर (रज़ि0) की तदबीर पर दुश्मन के क़रीब वाले कुएँ पर क़ब्ज़ा कर लिया। बाक़ी कुओं को भर दिया गया ताकि दुश्मन प्यासा रहे और मुसलमानों के पास पानी का हौज रहे। यह एक ऐसी जंगी चाल थी जिसने दुश्मन का हौसला तोड़ दिया।

3. 'अरीश' और नबी (सल्ल०) की वो बेमिसाल दुआ

मैदान–ए–बद्र के एक ऊंचे टीले पर हुजूर (सल्ल0) के लिए एक छोटा सा ख़ेमा (अरीश) बनाया गया, जिसे आज 'मस्जिद–ए–बद्र' (मस्जिद–ए–अरीश) के नाम से जाना जाता है। सारी रात आप (सल्ल0) सजदे में गिड़गिड़ाते रहे। आपकी चादर मुबारक शाने से गिर–गिर जाती थी। आपने रब से वह मशहूर

इल्तिजा की :

“ऐ अल्लाह! अगर आज ये मुट्ठी भर जमात हलाक हो गई, तो फिर क़यामत तक ज़मीन पर तेरा नाम लेने वाला कोई न बचेगा।”

4. कुदरती मदद और बारिश

उस रात अल्लाह ने दो बड़े करिश्मे दिखाए :

1. **सुकून की नींद :** मैदान–ए–जंग में होने के बावजूद मुसलमानों पर ऐसी ऊँघ (नींद) तारी हुई कि उनकी सारी थकान मिट गई।
2. **बारिश :** मूसलाधार बारिश हुई। मुसलमानों की तरफ़ की रेत जम गई जिससे उनके लिए चलना आसान हो गया, जबकि दुश्मन की तरफ़ की ज़मीन कीचड़ बन गई।

5. जंग का आगाज और फ़रिश्तों का नुजूल

जंग शुरू हुई तो अल्लाह ने मुट्ठी भर मुसलमानों की मदद के लिए आसमान से हजार फ़रिश्ते भेजे। कुरआन गवाह है कि फरिश्तों ने मोमिनों के साथ मिलकर जंग लड़ी। अबू जहल, जो अपनी ताक़त पर इतराता था, दो छोटे बच्चों (मुआ़ज़ और मुअ़्विज़) के हाथों मारा गया।

6. जंग का नतीजा

- **मुशरिकीन :** 70 मारे गए और 70 क़ैदी बना लिए गए। मक्का के बड़े–बड़े सरदार इस मैदान में मिट्टी में मिल गए।
- **मुसलमान :** सिर्फ़ 14 सहाबा शहीद हुए (6 मुहाजिर और 8 अनसार)।

मुसन्निफ़ का मुशाहिदा (Author's Note) :

बद्र के रेतीले टीलों और उस मैदान को देखना जहाँ 313 निहत्थे सहाबा ने बातिल को शिकस्त दी थी, आपके ईमान को एक नई ताजगी देता है। 50 रियाल और एक नमाज का मस्जिद–ए–नबवी से बाहर होना उस तारीख़ को आँखों से देखने के मुक़ाबले में बहुत मामूली है।

अफसोस कि आज का मुसलमान 'बद्र' की ज़ियारत तो करता है, मगर अपने अंदर वो जज़्बा पैदा नहीं करता। हमने इ़बादत को सिर्फ़ 'सैर–सपाटा' बना लिया है। अगर हम आज भी अपनी ज़िंदगी में वही 'रूह–ए–बिलाली' और बद्र वाला इख़्लास पैदा कर लें, तो अल्लाह की मदद आज भी हमारे साथ हो सकती है।

4- मज़लूमियत का लिबासः मेरा फ़लस्तीनी किफ़ाया और उम्मत का दर्द

जैसा कि मैंने पहले भी जिक्र किया कि मेरा यह सफ़र उस दौर में हो रहा था जब फ़लस्तीनी ग़ज़ा में अपने वजूद और किबला–ए–अव्वल की बक़ा के लिए उम्मत का फ़र्ज़–ए–किफाया अदा कर रहे थे। 7 अक्टूबर 2023 से शुरू हुआ वह जुल्म का सिलसिला पौने दो साल बीत जाने के बाद भी थमा नहीं था। इजराइल अपने मददगार मुल्कों के साथ मिलकर ग़ज़ा के निहत्थे नागरिकों को किसी कसाई की तरह काट रहा था। न अस्पताल बचे थे, न स्कूल, ऐसा कोई कोना नहीं था जहाँ बमबारी न हुई हो।

मरने वालों का आँकड़ा आबादी का 5% पार कर चुका था तकरीबन डेढ़ लाख फ़लस्तीनी शहीद हो चुके और पूरा शहर खंडहर बन चुका था। पूरी दुनिया के इंसाफ पसंद लोग, यहाँ तक कि खुद यहूदी भी इस वहशियाना जुल्म के ख़िलाफ सड़कों पर थे, लेकिन हम मुसलमान बेबस तमाशाई बने सिर्फ़ दुआओं तक महदूद थे।

इसी बेबसी और गम को जाहिर करने के लिए मैंने सफ़र–ए–हज की इब्तिदा से ही 'फ़लस्तीनी किफ़ाया' को अपनी पहचान बना लिया था। पूरे सफ़र में, चाहे मैंने कुर्ता–पाजामा पहना हो या टी–शर्ट और लोअर, वह किफाया हमेशा मेरे गले की जीनत रहा। वह महज़ एक कपड़ा नहीं था, बल्कि उन मज़लूमों की याददिहानी (Reminder) थी जो हर पल मेरे साथ रहती थी।

5- मदीना का एक यादगार और पुर-दर्द वाक़्या

मदीना के शुरुआती दिन पुर–सुकून थे, लेकिन जैसे–जैसे जायरीन की तादाद बढ़ी, मस्जिद–ए–नबवी ﷺ का सहन 'जम्मे–ग़फ़ीर' में तब्दील हो गया। असर की नमाज के बाद उस भीड़ को देखकर एक अरब नौजवान ने वज्द (जोश) में आकर कहा 'UMMAH!'--- मैंने English में जवाब दिया – 'कहाँ है उम्मत ग़ज़ा में?"

वाक़्ये की रूहानी और जज़्बाती गहराईः

वह एक तंदुरुस्त, तवाना और खूबसूरत नौजवान था। उसका लम्बा क़द, चौड़ा सीना और मोटी गर्दन उसकी जिस्मानी ताक़त की गवाही दे रहे थे, मगर उस जिस्मानी ताक़त से कहीं ज़्यादा गहरा असर उसके नर्म दिल का था।

- **किफाया और पहचान :** मेरे गले में पड़े उस 'अरबी किफाया' (रूमाल/स्कार्फ) ने जैसे उस नौजवान के लिए एक पुल का काम किया। उसने जैसे ही "फ़लस्तीन" कहा, जुबानों के सारे फासले खत्म हो गए। उस अरब नौजवान ने मुझे गले लगा लिया।
- **बे–ज़ुबान राब्ता (Silent Connection) :** कभी–कभी गले मिलना हजारों लफ़्ज़ों से ज़्यादा बात कर जाता है। वह गले मिलना सिर्फ़ दो इंसानों का मिलन नहीं था, बल्कि एक तड़पते हुए दिल का दूसरे हमदर्द दिल से मिलना था।
- **आँखों का अश्कबार होना :** मदीना की धूप में वे आँसू सिर्फ़ हमारे नहीं थे, बल्कि उस पूरी उम्मत के थे जो आज ग़ज़ा और दुनिया के दीगर हिस्सों में तकलीफ

में है।

हुज़ूर ﷺ की बारगाह में फरियाद :

उस वक्त हम अपने नबी ﷺ के दरवाजे पर थे। कहते हैं कि मदीना में निकलने वाला हर आँसू और हर दुआ सीधे हुजूर ﷺ की बारगाह में पेश होती है।

'ऐ मेरे रब्ब! मेरी इस बेबसी, मेरी इस तड़प और मेरी इन सिसकियों को अपने महबूब ﷺ के वसीले से कुबूलियत के दर्जे पर फाएज फ़रमा। आमीन!'

मदीना मुनव्वरा में हुजूर ﷺ के दरवाजे पर गुजरे उन चंद लम्हों के वाक्ये ने जैसे मेरी रूह को झकझोर कर रख दिया। उस लम्हे ने मेरे दिल के अंदर एक ऐसी तड़प पैदा कर दी जो पूरे सफ़र पर हावी रही। अ़राफ़ात की तपती धूप हो या मिना के तम्बुओं की खामोशी, वह तड़प हर वक्त मेरे साथ थी। यह वाक़्या अब मेरी बक़ाया ज़िंदगी में याद रहने वाला बन चुका था।"

मदीना से विदाई-जुदाई और रूहानी सफ़र का अगला पड़ाव

आख़िर वह भारी दिन आ गया जब तैयबा (मदीना) से रुख़्सत होना था। अब अगला पड़ाव मक्का पहुँचकर उमरा अदा करना था और फिर ह़ज तक तक़रीबन 35 दिन वहीं रुकना था। दिल में यह हसरत थी कि बीच में शायद एक बार फिर मदीना आने का मौक़ा मिल सके, मगर बदकिस्मती से यह न हो सका – जो मलाल बनकर आज भी दिल में है।

7 मई को जुहर की नमाज अल्लाह के हबीब ﷺ की चौखट पर मेरी आख़िरी नमाज थी। जब मैं रोजा–ए–पाक पर जाकर विदाई का सलाम पेश कर रहा था, तो कैफ़ियत बहुत

बोझिल थी। ऐसा लग रहा था कि रूह को उसके घर से अलग किया जा रहा हो। मगर, बैतुल्लाह (काबा) जाने की एक ख़ुशी भी थी कि अब उस घर को देखना है जिसकी तरफ़ हम दिन में पाँच बार रुख़ करते हैं।

बोझिल क़दमों से रोजा–ए–पाक से निकलकर कमरे पर पहुँचा, खाना खाया और बस आ चुकी थी। 3 बजे हम बसों पर सवार होने लगे। बस की खिड़की से जब मदीना मुनव्वरा का गुम्बद ओझल हो रहा था, तो दिल जोर–जोर से धड़क रहा थाकृएक तरफ़ मदीना की यादों का बोझ था, तो दूसरी तरफ़ मक्का की तरफ़ बढ़ते क़दमों का जोश।"

6- बैतुल्लाह की पहली झलक-दीवानगी और रूहानियत

मदीना की ठंडी यादों को समेटकर हम मक्का की तरफ़ बढ़े। रास्ते में मस्जिद–ए–अबरार (मीक़ात) में रुककर गुस्ल किया, एहराम की सफेद चादरें पहनीं, दो रकात नफल अदा की और बुलंद आवाज में तल्बिया ("लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक") पढ़ते हुए बसों पर सवार हुए। दिल में एक अजीब सी खुशी थी, जो ना–क़ाबिले–बयां थी – वह खुशी जो महबूब के घर जाने की होती है।

मक्का पहुँचकर हम अपने अ़ज़ीज़िया फ़्लैट्स पर पहुँचे। तब तक तक़रीबन रात के 3 बज चुके थे। सफ़र की थकान थी, मगर दिल में हसरत थी कि उसी वक्त उमरा करने का फैसला किया, ताकि एहराम का तक़्दुस बरकरार रहे और जल्द से जल्द काबा की ज़ियारत नसीब हो।

अल–सुबह हम मस्जिद–ए–हराम में थे। ह़ज मुसाफ़िरों की भीड़ अभी मामूल से काफी कम थी, जो हमारे लिए एक तोह़फ़ा था। मगर फिर भी, माताफ (काबा के करीब की जगह) में जाने में कुछ दुश्वारी हुई।

आख़िरकार, वह लम्हा आ गया! बस काबा पर पहली नज़र पड़ी। मैं और मेरी बेगम मदहोश थे। आँखों में आँसू थे और रूह में एक अजीब सा ठहराव। बस कुछ दुआएँ दिलों में थीं, अब उनके माँगने का सही वक्त था। वह नज़ारा – वह रूहानी सुकून – सिर्फ़ वही समझ सकता है जो उस वक्त उस जगह मौजूद हो।

तवाफ़ और सई – तकलीफ़ में इबादत का सुकून

बैतुल्लाह के माताफ में पहुँचते ही सबसे पहले नमाज–ए–फ़र्ज़ की साआदत मिली। अल्लाह की हम्द–ओ–सना के बाद तवाफ़ शुरू किया। काबा के चारों ओर घूमते हुए दुआओं में सबसे पहली दुआ मज़लूम फलस्तीनियों के लिए थी। साथ ही, जिन **लोगों** ने दुआओं की दरख्वास्त की थी, इस सियाकार (गुनाहगार) ने उनके लिए भी दुआएँ माँगीं। **मुल्क के मुसलमानों के लिए दीन का सही शऊर और आपसी इख्तिलाफात को मिटाने के लिए अल्लाह के हुजूर गिड़गिड़ाए।** मैं अल्लाह के सामने गिड़गिड़ाता रहा और अपने तवाफ़ के चक्कर पूरे करता रहा।

मैं बड़ा बदनसीब रहा कि इतनी कम भीड़ के बावजूद हज्र–ए–अस्वद तक न पहुँच सका। जब भी कोशिश करता, भीड़ के दबाव में बाहर हो जाता। आख़िरकार, मैंने दूर से ही बोसा (इस्तिलाम) लिया और अपने 7 चक्कर पूरे किए। इसके बाद मक़ाम–ए–इब्राहिम पर दो रकात नफल नमाज अदा की।

तकलीफ देह बात यह थी कि मेरे पैरों में दर्द और एक छाला होने की वजह से मैं काफी परेशानी में था। इसके बावजूद, मैंने हिम्मत नहीं हारी और सफा–मरवा की जानिब रुख़ किया। सई से फ़ारिग़ होकर हलक़ करवाया ओर अहराम खोल दिया।

आख़िरकार, वापसी अ़ज़ीज़िया रूम की जानिब हुई। आज थकान और जिस्मानी तकलीफ़ की वजह से हरम में वह वक़्त न दिया जा सका जिसका हक था, मगर दिल को सुकून था कि उमरा मुकम्मल हो गया।

तवाफ़ की रूहानी हकीकत और तारीख़

तवाफ–ए–बैतुल्लाह (काबा के चक्कर लगाना) की तारीख़ उतनी ही पुरानी है जितना कि यह इंसानियत। यह महज़ एक इ़बादत नहीं, बल्कि पूरी कायनात के निजाम (System) की एक रूहानी झलक है।

- **कायनात का निजाम** (Cosmic Connection) : तवाफ़ का फलसफा यह है कि कायनात की हर चीज एक मरकज (Center) के चारों तरफ़ घूम रही है। इलेक्ट्रॉन प्रोटॉन के चक्कर लगा रहे हैं, ज़मीन सूरज के चक्कर लगा रही है। ठीक उसी तरह, एक मोमिन काबा का तवाफ़ करके यह ऐलान करता है कि उसकी ज़िंदगी का मरकज भी सिर्फ़ अल्लाह है।
- **फरिश्तों का तवाफ़** (Baitul Ma'mur) : रिवायतों के मुताबिक़, इंसानों से भी पहले फ़रिश्ते अल्लाह की इ़बादत के लिए तवाफ़ करते थे। आसमानों में 'बैतुल मामूर' नाम की एक जगह है, जो ठीक काबा के ऊपर है। वहाँ रोजाना 70,000 फ़रिश्ते तवाफ़ करते हैं। ज़मीन पर काबा का तवाफ़ करना उसी आसमानी इ़बादत की नकल है।
- **ह़ज़रत आदम (अ.स.) और तामीर-ए-अव्वल :** कहा जाता है कि सबसे पहले ह़ज़रत आदम (अ.स.) ने अल्लाह के हुक्म से काबा की बुनियाद रखी और उसका तवाफ़ किया।
- **ह़ज़रत इब्राहीम (अ.स.) की पुकार :** सदियों बाद, जब काबा की दीवारें ढह चुकी थीं, तब अल्लाह ने ह़ज़रत इब्राहीम (अ.स.) और ह़ज़रत इस्माईल (अ.स.) को इसे

दोबारा तामीर करने का हुक्म दिया। तब से लेकर आज तक, तवाफ़ का यह सिलसिला एक पल के लिए भी नहीं रुका है।

- फतह–ए–मक्का और हुजूर ﷺ की सुन्नतः
  - ○ इस्तिक़लाल और शानः हजूर ﷺ मक्का में दाख़िल होने के बाद काबा शरीफ तशरीफ ले गए। उस समय काबा के आसपास 360 बुत रखे हुए थे।
  - ○ छड़ी का इस्तेमालः आप ﷺ ने उन बुतों को अपने हाथ से नहीं गिराया, बल्कि आपके हाथ में एक छड़ी थी। आप उस छड़ी से बुतों की तरफ़ इशारा करते और वह मुंह के बल ज़मीन पर गिर जाते।
  - ○ कुरान की तिलावतः बुतों को गिराते समय आपकी ज़बान मुबारक पर कुरान की यह आयत जारी थीः

وَقُلْ جَاءَ الْحَقُّ وَزَهَقَ الْبَاطِلُ ۚ إِنَّ الْبَاطِلَ كَانَ زَهُوقًا

  - ○ (और फ़रमाइए कि हक़ आ गया और बातिल मिट गया। बेशक बातिल मिटने ही वाला था।)
  - ○ निचोड़ः यह इस बात का प्रतीक था कि अब शिर्क का दौर खत्म हो गया है और तौहीद का दौर शुरू हो गया है।

यह सुन्नत हमें सिखाती है कि हज का असल मक़सद सिर्फ़ काबा के चक्कर लगाना `नहीं, बल्कि अपने दिल के अंदर बैठे 'अना', लालच और दुनियावी बुतों को भी निकाल फेंकना है।

तवाफ़ की खास बातें:

1– <u>दिल का रुख :</u> तवाफ़ के दौरान हाजी का बायाँ कंधा (Left Shoulder) काबा की तरफ़ होता है। इसके पीछे वजह यह है कि इंसान का दिल बाईं तरफ़ होता है, और तवाफ़ करते वक़्त हमारा दिल अल्लाह के घर के सबसे क़रीब होना चाहिए।

2– <u>एंटी-क्लॉकवाइज़ (Anti-clockwise) :</u> तवाफ़ हमेशा घड़ी की सुई के उलट होता है। साइंस के मुताबिक़ भी कायनात की ज़्यादातर गर्दिश (Movement) इसी दिशा में होती है।

3– तल्बिया क्यों नहीं? तवाफ़ के दौरान तल्बिया नहीं पढ़ा जाता। रूहानी वजह यह है कि 'तल्बिया' एक पुकार है, जिसका मतलब है: "ऐ अल्लाह, मैं हाजिर हूँ!" जब आप काबा के चक्कर लगा रहे होते हैं, तो आप अब 'हाजिर हो चुके' होते हैं। अब पुकारने का नहीं, बल्कि अपने रब से बातें करने का वक़्त होता है।

<u>काबा शरीफ के अहम हिस्से</u>

- <u>हज्र-ए-अस्वद (Hajr-e-Aswad) :</u> ये जन्नती पत्थर काबा के **मशरिक़ी** (पूर्वी) कोने में नसब है। तवाफ़ का आग़ाज़ और इख़्तिताम यहीं से होता है।
- <u>मक़ाम-ए-इब्राहिम (Maqam-e-Ibrahim) :</u> मताफ़ में एक सुनहरी जाली के अंदर हज़रत इब्राहिम (अ़लै0) के क़दमों के निशान वाला पत्थर है। तवाफ़ के बाद यहाँ दो रकात नमाज पढ़ना सुन्नत है।
- <u>मुल्तजम (Multazam) :</u> हज्र–ए–अस्वद और काबा के

दरवाजे के दर्मियान की जगह। ये दुआ की क़बूलियत का ख़ास मक़ाम है।

- <u>हतीम/हिज्र-ए-इस्माइल (Hateem) :</u> काबा के शुमाली हिस्से में एक निस्फ़–दायरा (half circle) दीवार है। ये असल में काबा ही का हिस्सा है।
- <u>मीजाब-ए-रेहमत (Meezab-e-Rehmat) :</u> काबा की छत का सुनहरी परनाला जो हतीम की तरफ़ गिरता है।
- <u>रुक्न-ए-यमनी (Rukn-e-Yamani) :</u> काबा का वो कोना जो यमन की तरफ़ है। तवाफ़ के दौरान इसे हाथ लगाना सुन्नत है।
- <u>ज़मज़म (Zamzam) :</u> हालाँकि अब इसका कुआँ नज़र नहीं आता, लेकिन मताफ़ के हर हिस्से में इसके कूलर्स मौजूद हैं।

<u>सई की तारीख़ -हज़रत हाजरा का सब्र</u>

सई (सफा और मरवा के बीच सात चक्कर लगाना) का ऐतिहासिक पसमंजर इस्लाम की तारीख़ के सबसे भावुक और रूहानी वाकयात में से एक है। यह पूरी तरह से हज़रत हाजरा (अ.स.) की ममता, उनके सब्र और अल्लाह पर उनके अटूट भरोसे की याद दिलाता है।

۞ اِنَّ الصَّفَا وَالْمَرْوَةَ مِنْ شَعَآئِرِ اللّٰهِ ۚ فَمَنْ حَجَّ الْبَيْتَ اَوِ اعْتَمَرَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ اَنْ يَّطَّوَّفَ بِهِمَا ؕ

"बेशक, सफा और मरवा अल्लाह की निशानियों में से हैं। लिहाज़ा, जो शख़्स बैतुल्लाह का हज या उमराह करे, उस पर

कोई गुनाह नहीं कि वह इन दोनों के दर्मियान चक्कर लगाए (सई करे)।"(बक़रा:158)

- **<u>वादी-ए-बे-गयाह (एक बंजर घाटी) :</u>** अल्लाह के हुक्म से ह़ज़रत इब्राहीम (अ.स.) अपनी पत्नी ह़ज़रत हाजरा और अपने नन्हे बेटे ह़ज़रत इस्माईल (अ.स.) को मक्का की एक वीरान और बंजर वादी में छोड़ आए थे।
- **<u>ह़ज़रत हाजरा का तवक्कुल (भरोसा) :</u>** जब ह़ज़रत इब्राहीम (अ.स.) उन्हें छोड़कर जाने लगे, तो ह़ज़रत हाजरा ने पूछाः "क्या अल्लाह ने आपको इसका हुक्म दिया है?" इब्राहीम (अ.स.) ने कहा – "हाँ"। तब ह़ज़रत हाजरा ने ऐतिहासिक जुमला कहा : **"फिर अल्लाह हमें कभी बर्बाद नहीं करेगा।"**
- **<u>पानी की तलाश और दौड़ :</u>** जब पीने का पानी खत्म हो गया और भूख–प्यास से नन्हे इस्माईल (अ.स.) तड़पने लगे, तो माँ की ममता बेचौन हो उठी। वह पानी या किसी मुसाफ़िर की तलाश में पास की पहाड़ी 'सफा' पर चढ़ीं, फिर घाटी में दौड़ते हुए दूसरी पहाड़ी 'मरवा' पर चढ़ीं। उन्होंने इसी तरह इन दोनों पहाड़ियों के बीच सात बार चक्कर लगाए।
- **<u>ज़मज़म का जहूर (निकलना) :</u>** जब वह सातवीं बार मरवा पहाड़ी पर पहुँचीं, तो उन्होंने एक आवाज सुनी। जब वह वापस अपने बेटे के पास आईं, तो देखा कि जहाँ नन्हे इस्माईल (अ.स.) ने अपनी एड़ियाँ रगड़ी थीं, वहाँ से पानी का एक चश्मा उबल रहा था।

सई की अहमियत (हज में सबक़) :

1. **कोशिश की अहमियत :** अल्लाह चाहता तो पहले ही पल पानी दे सकता था, लेकिन उसने ह़ज़रत हाजरा को दौड़ाया। यह सिखाता है कि दुआ के साथ–साथ 'कोशिश' (Struggle) करना इंसान का काम है और नतीजा देना अल्लाह का।
2. **औरत का एहतराम :** यह इस्लाम की महानता है कि एक औरत की जद्दोजहद (संघर्ष) को क़यामत तक के लिए ह़ज का लाजमी हिस्सा बना दिया गया।

सई करते वक़्त जब हाजी उस जगह से गुजरते हैं जहाँ ह़ज़रत हाजरा दौड़ी थीं, तो उन्हें उस माँ की बेबसी और अल्लाह पर उनके कामिल यक़ीन की याद आती है। आज उस जगह पर हरी लाइटें (Green Lights) लगी हैं, जहाँ मर्द हाजी बीबी हाजरा की सुन्नत पर अमल करते हुए तेज क़दमों से या दौड़ते हुए उस दूरी को तय करते हैं, ताकि उस माँ के दर्द और संघर्ष को महसूस कर सकें।

मक्का मुकर्रमा की अहम ज़ियारतें (Holy Sites of Makkah)

मक्का की गलियां और पहाड़ अल्लाह की निशानियों और हुजूर (सल्ल0) की सीरत के गवाह हैं। यहाँ की अहम ज़ियारतें ये हैं :

1. जबल–ए–नूर और गार–ए–हिरा (Jabal-e-Noor & Ghar-e-Hira)

ये वो मुक़द्दस पहाड़ है जहाँ इस्लाम की पहली वही (Wahi) नाजिल हुई थी।

अहमियत : इसी पहाड़ की चोटी पर 'गार–ए–हिरा' है, जहाँ नबी–ए–करीम (सल्ल0) नबूवत से पहले इ़बादत के लिए

जाया करते थे। यहीं ह़ज़रत जिब्रील (अ़लै0) ने 'इकरा' (पढ़ो) के साथ पहली आयत पेश की थी।

2. जबल-ए-सौर और गार-ए-सौर (Jabal-e-Thawr)

मक्का के जुनूब (South) में वाक़य ये पहाड़ ह़िज़रत की याद दिलाता है।

अहमियत : जब हुजूर (सल्ल0) और ह़ज़रत अबू बक्र (रज़ि0) मक्का से मदीना ह़िज़रत के लिए निकले, तो मुशरिकीन से बचने के लिए आपने तीन दिन इसी पहाड़ के 'ग़ार–ए–सौर' में क़ियाम फ़रमाया था।

3. मैदान-ए-अ़राफ़ात और जबल-ए-रह़मत (Mount Arafat)

- **मैदान-ए-अ़राफ़ात :** ये ह़ज का सबसे अहम मरकज है। 9 जिल्हिज्जा को यहाँ रुकना (वकूफ़–ए–अराफात) ह़ज का सबसे बड़ा रुक्न है।
- **जबल-ए-रह़मत** : अ़राफ़ात के मैदान में एक छोटी पहाड़ी है जहाँ खड़े होकर नबी (सल्ल0) ने अपना आख़री ख़ुत्बा (Hujjat-ul-Wida) दिया था।

4. मुज़दलिफ़ा और मिना (Muzdalifah & Mina)

मिना : इसे 'तंबुओं (tents) का शहर' कहा जाता है। यहाँ जायरीन ह़ज के दौरान क़ियाम करते हैं और यहीं 'जमरात' (शैतान को कंकड़ी मारना) का अमल होता है।

मुजदलिफा : अ़राफ़ात और मिना के बीच वो जगह जहाँ हाजी अ़राफ़ात से वापसी पर रात गुजारते हैं।

5. जन्नत-उल-मुअल्ला (Jannat-ul-Mu'alla)

ये मक्का का सबसे पुराना और मोहतरम क़ब्रिस्तान है।

अहमियत : यहाँ हुजूर (सल्ल0) की पहली

रफीक़–ए–हयात ह़ज़रत ख़दीजा (रज़ि0) का मजार–ए–मुबारक मौजूद है। इसके अलावा कई सहाबा और नबी (सल्ल0) के बुज़ुर्ग यहाँ मदफून हैं।

6. मौलिद-उन-नबी (Place of Birth)

खाना–ए–काबा के क़रीब ही वो मक़ाम है जहाँ हुज़ूर (सल्ल0) की विलादत (पैदाइश) हुई थी। अब यहाँ एक बड़ी लाइब्रेरी (Maktaba Makkah al & Mukarramah) बनी हुई है।

मक्का की सबसे करीबी मीक़ात : मस्जिद-ए-आयशा (तनईम)

मक्का शरीफ में ठहरे हुए जायरीन के लिए सबसे आसान और नज़दीक मुकाम 'तनईम' है। यह ह़रम शरीफ़ (काबा) से लगभग 7 से 8 किलोमीटर की दूरी पर वाकेय है।

तारीख़ी अहमियतः

इसका नाम 'मस्जिद–ए–आयशा' इसलिए है क्योंकि हुज्जतुल–विदा (आख़िरी हज) के मौके पर हुज़ूर ﷺ के हुक्म से ह़ज़रत आयशा सिद्दीका (रज़ि0) ने इसी जगह से उमरा का एहराम बाँधा था।

वहाँ पहुँचने का आसान और सस्ता तरीका (Practical Guide):

- **लोकल बस (Saptco/Public Bus) :** ह़रम शरीफ़ के पास (खास तौर पर 'मिसफला' या 'जबल–ए–काबा' की तरफ़) से तनईम के लिए सरकारी और प्राइवेट बसें हर वक़्त चलती हैं।
- **किराया** : इसका किराया बहुत मामूली होता है (लगभग 2 से 5 रियाल)।
- **टैक्सी (Shared Taxi) :** अगर आप अकेले हैं, तो

'शेयर्ड टैक्सी' (Shared Taxi) भी मिल जाती है जो 5–10 रियाल में आपको मस्जिद–ए–आयशा पहुँचा देती है।

- <u>वक़्त का तालमेल :</u> जाने और आने में कुल मिलाकर 1 से 1.5 घंटा लगता है। आप किसी भी नमाज के बाद आसानी से जाकर एहराम बाँधकर वापस आ सकते हैं।

<u>मस्जिद-ए-जीराना (Ji'rana) : एक और रूहानी मुकाम</u>

तनईम के अलावा एक और मीकात 'जीराना' है। यह हरम से थोड़ा दूर (लगभग 22–25 किमी) है।

खास बात : यहाँ से नबी–ए–करीम ﷺ ने जीकादा के महीने में उमरा का एहराम बाँधा था। जो लोग सुन्नत की मुकम्मल पैरवी करना चाहते हैं, वे यहाँ भी जाते हैं।

आपको अपने होटल के पास से ही ज़ियारत के लिए बसें मिल जाएँगी। ये बसें निहायत मुनासिब किराए, यानी 15 से 20 रियाल फी सवारी (per person) में आपको मक्का के तमाम अहम मुकामात की ज़ियारत करा देती हैं।

तमाम अहम मुकामात : इन बसों के जरिए आप जबल–ए–नूर (गार–ए–हिरा), जबल–ए–सौर, मैदान–ए–अराफात, जबल–ए–रहमत, मुज़दलिफ़ा और मिना जैसे तमाम तारीख़ी और मुक़द्दस मुकाम देख सकते हैं।

<u>सफ़र का इख़्तिताम</u>

इस सफ़र का सबसे बड़ा फायदा ये है कि ये बसें आख़िर में आपको मस्जिद–ए–जीराना (Meeqat) लेकर जाती हैं।

जो लोग दोबारा उमरा करना चाहते हैं, वे यहाँ से एहराम बाँधकर नीयत कर सकते हैं।

इसके बाद बस आपको वापस ह़रम शरीफ़ या आपके होटल (अ़ज़ीज़िया) तक छोड़ देती है।

ताएफ का सफ़र : सब्र और इस्तकामत की दास्तान

मक्का मुकर्रमा की तपिश से दूर, पहाड़ों पर वाकेय 'ताएफ' का ठंडा शहर अपनी हरियाली और रूहानियत के लिए मशहूर है। अ़ज़ीज़िया (मक्का) में ठहरने वाले जायरीन के लिए ताएफ का सफ़र करना बेहद आसान और यादगार हो सकता है।

सफ़र की सहूलियत और किराया :

- **सवारी :** अ़ज़ीज़िया के होटलों के पास से सुबह 6 से 7 बजे के दर्मियान बसें निकलती हैं।
- **किराया :** यह सफ़र तकरीबन 30 से 40 रियाल (फी सवारी) में मुकम्मल हो जाता है, जो जायरीन के लिए बहुत मुनासिब है।

ताएफ के अहम मुक़ामात

मस्जिद-ए-अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) :

यह ताएफ की सबसे अहम और मरकजी मस्जिद है। यहाँ ह़ज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि0) का मजार–ए–मुबारक और उनकी यादगारें मौजूद हैं।

अंगूर के बाग :

ताएफ अपने मीठे अंगूरों और फलों के लिए जाना जाता है। तारीख़ बताती है कि जख्मी हालत में हुजूर ﷺ ने एक अंगूर

के बाग में पनाह ली थी, जहाँ 'अद्दास' (रज़ि0) ने आपको अंगूर पेश किए थे।

मस्जिद-ए-अद्दास :

यह वह मुकाम है जहाँ जख्मी हालत में हुजूर ﷺ ने आराम फ़रमाया था। यहाँ की खामोशी आज भी उस दर्दनाक वाकिऐ की याद दिलाती है जब ताएफ के लोगों ने रह़मत–उल–लिल–आलमीन पर पत्थर बरसाए थे।

मस्जिद-ए-कूँहः

रिवायत है कि यहाँ हुजूर ﷺ ने टेक लगाई थी, जिससे पत्थर पर आपके जिस्म–ए–अतहर का निशान बन गया था।

ताएफ की ठंडी हवाएँ चेहरे को सुकून तो देती हैं, मगर जब इंसान उस वाकिऐ को याद करता है जब हुजूर ﷺ के नालैन–ए–मुबारक लहू से भर गए थे, तो आँखें भर आती हैं। 40 रियाल का ये सफ़र हमें ये सबक देता है कि दीन की खातिर कितनी मुसीबतें झेली गई हैं।

हैरत होती है उन लोगों पर जो ताएफ सिर्फ़ 'पिकनिक' मनाने और अंगूर खाने जाते हैं। ताएफ तो वो जगह है जहाँ पहाड़ों के दर्मियान खड़े होकर इंसान को अपने नफ्स (Ego) की कमजोरी का एहसास होना चाहिए। अगर वहाँ जाकर भी दिल नहीं पसीजा और रूह नहीं तड़पी, तो समझ लीजिए कि आपने सिर्फ़ रास्ता तय किया है, मंजिल नहीं पाई।

एक मुफीद मशवरा :

ताएफ जाते वक़्त अपने साथ एक हल्की चादर रखें, क्योंकि वहाँ का मौसम मक्का के मुकाबले सर्द होता है। वापसी पर मीकात 'कर्न अल–मनाजिल' (Qarn al-Manazil) है।

आजकल इसे 'अल–सैल अल–कबीर' (Al Sail Al Kabir) के नाम से भी जाना जाता है। जहाँ से आप दोबारा एहराम बाँध कर उमरा की नीयत करेंगे।

मस्जिद अर्राजी- जदीद इस्लामी तर्ज-ए-तामीर का शाहकार

यह मस्जिद मक्का के अल–नसीम (Al-Naseem) इलाके में वाकेय है। यह ह़रम शरीफ़ से थोड़ी दूरी पर है, लेकिन यहाँ की रौनक़ और इंतजाम देखने लायक होता है।

- **जदीद तर्ज-ए-तामीर** (Modern Architecture) : मस्जिद अर–राजी का गुम्बद और मीनार न सिर्फ़ नक्काशी का बेहतरीन नमूना हैं, बल्कि इसकी लाइटिंग (Lighting) रात के वक़्त इसे एक नूरानी मंज़र अता करती है।
- **इस्लामी मरकज** (Islamic Center) : यह सिर्फ़ एक मस्जिद नहीं बल्कि एक मुकम्मल 'मदरसा और लाइब्रेरी' है। यहाँ दीनी तालीम के लिए बाकायदा क्लासें लगती हैं, जो इसे एक रूहानी यूनिवर्सिटी का दर्जा देती हैं।
- **सहूलियात** (Facilities) : यहाँ की सबसे बड़ी खूबी इसका नज्म–ओ–जब्त (Discipline) है। एस्केलेटर (Escalators) और व्हीलचेयर का इंतजाम बुजुर्ग हाजियों के लिए एक बहुत बड़ी नेअमत है।
- **खुत्बों का तर्जुमा** (Translations) : यह इस मस्जिद की सबसे इंफिरादी (Unique) बात है। यहाँ अरबी न जानने वाले हाजियों के लिए हेडफोन (Headphones)

या स्क्रीन के जरिए खुत्बे का तर्जुमा मुहय्या कराया जाता है, ताकि हर कोई अल्लाह का पैग़ाम अपनी ज़बान में समझ सके।

हज-ए-तमत्तो - सुकून और सब्र का दर्मियानी वक़्फ़ा

मेरा यह सफ़र 'हज–ए–तमत्तो' था। यह अल्लाह की तरफ़ से अपने बंदों के लिए एक अजब इनायत है। मदीना मुनव्वरा की हाज़िरी के बाद जब हम मक्का पहुँचे, तो एहराम की पाबंदी में उमरा मुकम्मल किया। इसके बाद हज के कवानीन के मुताबिक़ हमने एहराम खोल दिया और आम लिबास में आ गए।

उमरा और हज के बीच के ये चंद दिन एक अजीब 'इंतजार' के दिन थे। जिस्म तो आम कपड़ों में था, मगर रूह अभी भी उन्हीं सफेद चादरों में अटकी थी। यह वक़्फ़ा इसलिए था ताकि हाजी अपनी थकान मिटा सके और 7/8 ज़िलहिज्जा से शुरू होने वाले हज के कठिन अरकान के लिए खुद को ताजा–दम कर सके।

लेकिन इन खाली दिनों में भी, जब मैं हरम की तरफ़ जाता, तो मेरा **'फ़िलिस्तीनी किफ़ाया'** मेरे साथ होता। उमरा के एहराम और हज के एहराम के बीच का यह समय मैंने दुआओं और उस मजबूर उम्मत के गम को सीने में जज़्ब करने में बिताया, जिसका जिक्र मैंने अपने सफ़रनामे में आगे कई बार किया है।

7- कुरआन की गवाही - सूरह अल-मायदा (आयत 51) और मेरी शिकायत

अपने मुस्लिम हुक्मरानों की मुनाफिकत और खामोशी देखकर दिल रंजीदा था। मैं अक्सर अपने रब के हुजूर सूरह अल–मायदा की आयत नंबर 51 पढ़ता और अपनी बेबसी की शिकायत दर्ज कराता कि ऐ अल्लाह! ये तेरे दीन के रखवाले आज बातिल के साथ खड़े हैं।

۞ يَاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا لَا تَتَّخِذُوا الۡيَهُوۡدَ وَالنَّصٰرٰۤى اَوۡلِيَآءَ ‌ؔ‌ۘ بَعۡضُهُمۡ اَوۡلِيَآءُ بَعۡضٍ‌ ؕ وَمَنۡ يَّتَوَلَّهُمۡ مِّنۡكُمۡ فَاِنَّهٗ مِنۡهُمۡ‌ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَهۡدِى الۡقَوۡمَ الظّٰلِمِيۡنَ‏ ﴿۵۱﴾

"ऐ ईमानवालो! तुम यहूदियों और ईसाइयों को अपना दोस्त (मददगार और सरपरस्त) न बनाओ, वे (तुम्हारे मुकाबले में) एक–दूसरे के दोस्त हैं। और तुम में से जो कोई उन्हें अपना दोस्त बनाएगा, तो बेशक वह उन्हीं में से (गिना जाएगा) है। यकीनन अल्लाह जालिमों को हिदायत नहीं देता।" (सूरह अल–मायदा:51)

''वह उन्हीं में से है'': यह वह सख़्त चेतावनी है जो उन मुस्लिम हुक्मरानों के लिए है जो मज़लूमों का साथ देने के बजाय जालिमों के साथ अपने रिश्ते और व्यापार बचाने में लगे थे। यह आयत मेरे लिए एक रूहानी कोड़े की तरह महसूस हो रही थी। यह महज़ लफ़्ज़ नहीं हैं, बल्कि उन हुक्मरानों के मुकद्दर का फैसला है जिन्होंने मज़लूमों की सिसकियों पर अपने 'मफ़ादात' (फायदे) को चुना।

पूरे हज के दौरान – चाहे वह तवाफ़ हो, सई हो या मिना की रातें – मेरे मरकज–ए–तवज्जो (Core focus) वही

ग़ज़ा के मासूम बच्चे, बेबस औरतें, बूढ़े, जाँबाज सहाफी, डॉक्टर्स और आम शहरी थे जो इंसानियत की जंग लड़ रहे थे। दिल जख़्मी था, रूह तड़प रही थी, मगर सिवाय आँसुओं और दुआओं के मेरे पास कोई और जरिया न था।

8- इरादे की ताकत - वह एक पैर वाला मुसाफ़िर और मेरा टूटा हुआ वहम

अज़ीज़िया के हमारे फ्लैट से ह़रम शरीफ़ तक का सफ़र रोजाना का मामूल था। सफ़र की शुरुआत से ही मेरे पैरों में तकलीफ रहने लगी थी पैरों में छाले और तेज दर्द की वजह से ज़्यादा चलना मुहाल था। मेरी बेगम माशा–अल्लाह सेहतमंद और फुर्तीली थीं, उनका दिल चाहता कि दिन में दो–तीन तवाफ़ करें, लेकिन मेरी मजबूरी और दर्द की वजह से वह भी एक ही तवाफ़ कर पाती थीं। मुझे अक्सर यह एहसास खाए जाता कि मेरी वजह से उनकी इ़बादत में कमी रह रही है।

एक दिन, जब हम शटल बस से हरम जा रहे थे, मेरी नज़र एक जवान मर्द पर पड़ी। वह एक पैर से माज़ूर था, लेकिन उसकी फुर्ती और तेज रफ्तार देखकर अक्ल दंग रह गई। वह जितनी तेजी से बस में सवार हुआ, उतनी ही तेजी से हरम पहुँचकर उतर भी गया। उसे देखकर मेरे अंदर न जाने कहाँ से एक बिजली सी कौंधी।

मैंने अपने दर्द को भुलाकर उसकी तरफ़ दौड़ लगाई और लपककर उसे गले लगा लिया। मेरी आँखें बेसाख्ता बहने लगीं। वह अजनबी शायद समझ न पाया कि इस मिलन की वजह क्या है, और मैं सिसकियों की वजह से कुछ बोल न सका। वह मुस्कुराकर अपने रास्ते चल दिया, लेकिन मुझे एक बहुत बड़ा सबक दे गया।

मैंने अपनी बेगम से अपने आँसू छुपाने की कोशिश की, क्योंकि एक मर्द के लिए अपनी शरीक–ए–हयात के सामने रोने में थोड़ी झेंप महसूस होती है, मगर उस दिन आँसू रुकने का

नाम नहीं ले रहे थे। ताज्जुब की बात यह थी कि उस दिन मुझे अपने पैरों का कोई दर्द महसूस नहीं हुआ। जिस इंसान से एक तवाफ़ नहीं हो रहा था, उस दिन मैंने बेगम के साथ बड़े सुकून से दो तवाफ़ मुकम्मल किए।

उस दिन मुझे समझ आया कि तकलीफ जिस्म के किसी हिस्से में नहीं, बल्कि हमारे दिमाग और इरादे में होती है। अगर हौसला जवान हो, तो जिस्म की माज़ूरी कभी रास्ता नहीं रोक सकती।

9- दहलीज और दुआ-मस्जिद-अल-राजी और उस देहाती का वाक़िआ

मक्का का एक और वाक़िआ मुझे आज भी बेचौन कर देता है। हमारे अ़ज़ीज़िया फ़्लैट्स के पास ही **'मस्जिदुर्राजी'** है, जहाँ ह़ज के दिनों में बर्रे–सग़ीर (भारत–पाकिस्तान–बांग्लादेश) के हाजियों का एक हुजूम उमड़ता है। अल्ह़म्दुलिल्लाह, हमें तीन जुमे ह़रम शरीफ़ में नसीब हुए थे। ह़ज के सफ़र से ठीक पहले वाले जुमे के लिए हमने तय किया कि हम मस्जिद–अल–राजी में ही नमाज अदा करेंगे, ताकि हरम में नए आने वाले मुसाफ़िरों को तवाफ़ और ज़ियारत का ज़्यादा मौक़ा मिल सके।

जुमे के बाद एक पाकिस्तानी आलिम ने उर्दू में खुत्बे का तर्जुमा और बयान शुरू किया। उनके बयान की एक बात मेरे दिल में हमेशा के लिए पैबस्त हो गई। उन्होंने दुआ माँगने के तरीके पर एक रूह़ानी वाक़िआ सुनाया:

"एक देहाती किसान ह़रम शरीफ़ में दुआ माँग रहा था। वह कोई रटी–रटाई अरबी दुआ नहीं पढ़ रहा था, बल्कि अपने रब से अपनी ही देहाती बोली में बातें कर रहा था। उसने निहायत आजिजी से कहा: **'या अल्लाह! मैं एक अनपढ़ देहाती किसान हूँ, मुझे माँगने का सलीका नहीं आता। मगर ऐ मेरे मालिक, मेरे इलाके में एक रीत है कि जब कोई माँगता-माँगता हमारी दहलीज पार करके घर के आँगन तक आ जाए, तो हम उसे कभी खाली हाथ वापस नहीं भेजते। या अल्लाह! मैं भी दर-दर माँगता हुआ आज तेरे घर की चौखट के अंदर आ गया हूँ - अब मुझे यहाँ से खाली हाथ न भेजना।"**

आलिम साहब की इस बात के पीछे एक बड़ी दलील थी।

अक्सर हम अरबी की बड़ी–बड़ी दुआएँ रट लेते हैं जिनका मतलब हमें मालूम नहीं होता। लेकिन जब हम अपनी 'मादरी ज़बान' (Mother Tongue) में अपने रब से बात करते हैं, तो वह सीधा दिल की गहराइयों से निकलती है। अल्लाह तो हर ज़बान पर कुदरत रखता है। अपनी ज़बान में माँगने वाला अपने रब से बराह–ए–रास्त (Direct) जुड़ जाता है। उस वक़्त माँगने वाले और रब के दर्मियान कोई पर्दा नहीं रहता। वह दुआ महज़ अल्फ़ाज़ नहीं, बल्कि रूह की पुकार बन जाती है।

10- असल सफ़र-ए-हज-मिना की रवानगी और दीवानगी

"28 अप्रैल को हज के सफ़र पर निकलने के बाद, आख़िरकार 3 जून/ 7 ज़िलहिज्जा की वह मुक़द्दस घड़ी आ गई जब असल सफ़र–ए–हज शुरू होने जा रहा था। मदीना पहुँचने के बाद, 29 अप्रैल की सुबह ही सऊदी हज मिनिस्ट्री के अहलकारों ने हमें 'नुसुक कार्ड' बनाकर सौंप दिए थे। यह कार्ड हमारी बायोमेट्रिक और सारी डिटेल्स के साथ डिजिटल रूप से दर्ज था, जिसे हर वक़्त साथ रखना लाजिमी था।

इसके अलावा, मिना कैंप के मुअल्लिम के मुलाजिमीन ने मिना और अ़राफ़ात के हमारे ख़ेमों (टेंट) की डिटेल्स वाला एक और कार्ड दिया, जिसे स्कैन करके कैंप की जानकारी हासिल की जा सकती थी। इन दोनों कार्डों को मुकम्मल हिफाजत के साथ अपने साथ रखना हमारी ज़िम्मेदारी थी।

अ़ज़ीज़िया से मगरिब के फौरन बाद मिना जाने के लिए बसें आ गईं। पहली ही बस में हम दोनों तल्बिया पढ़ते हुए सवार हो गए।

तल्बिया पढ़ते हुए दिल की जो कैफ़ियत थी, वह नाकाबिले–बयां है, आँखें अश्कबार हो चली थीं और कल्ब (दिल) में एक गजब की खुशी महसूस हो रही थी।

"लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक, लब्बैक ला शरीका लका लब्बैक, इन्नल हम्दा वन-नेअमता लका वल-मुल्क, ला शरीका लक।"

(मैं हाजिर हूँ ऐ अल्लाह, मैं हाजिर हूँ। मैं हाजिर हूँ, तेरा कोई शरीक (साझेदार) नहीं है, मैं हाजिर हूँ। बेशक तमाम तारीफें,

नेअमतें और बादशाही तेरी ही है। तेरा कोई शरीक नहीं है।)

तल्बिया का मतलब ही यही है कि अल्लाह ने ह़ज़रत इब्राहीम (A.S) के जरिए जो पुकार (हज का ऐलान) लगाई थी, हम उसका जवाब दे रहे हैं। इख्लास (Sincerity) के साथ बार–बार ''**तेरा कोई शरीक नहीं**'' कहना यह ऐलान है कि हाजी सिर्फ़ और सिर्फ़ अल्लाह के दर का भिखारी है।

मैंने बेगम को सीट पर बैठा दिया और मैं खुद खड़ा होकर, करीब 2 मील का सफ़र जो एक घंटे में तय हुआ, उसमें तल्बिया पढ़ता रहा।"

मिना की दीवानगी और ख़ेमों की ह़क़ीक़त

"चूँकि हम शुरुआती गाड़ियों में सवार हुए थे, इसलिए अन्य हाजियों के मुकाबले हम बहुत जल्दी पहुँच गए। हम एकदम शुरू में, रात 9 बजे तक अपने मिना के ख़ेमों (टेंटों) में आ चुके थे।

यहाँ का मंज़र रूह को झकझोर देने वाला था। तकरीबन 17 लाख हाजियों के लिए यहाँ टेंट लगे थे जो अलग–अलग कैटेगरी में थे। इनमें हमारे इंडियन ह़ज कमेटी के खेमे सबसे नीचे की कैटेगरी का इंतजाम होता है, जहाँ भीड़ और वसायल की कमी अक्सर महसूस होती है। ख़ेमों की यह पूरी बस्ती रूहानी दीवानगी और नज़्म.ओ.ज़ब्त के बीच का एक अजीब सा मिलन थी।

मिना का टेंट – इ़बादत, कशमकश और सब्र

"हमारे टेंट में तकरीबन 200 हाजियों के रहने का 5 दिनों के लिए इंतजाम था। यहाँ 6×1.75 फुट का एक बेड, तकिया,

कम्बल, चादर, छाता और पानी की बोतल मुहय्या कराई गई थी। चाय और पानी का इंतजाम था, लेकिन टेंट में जगह कम थी। ईशा की नमाज टेंट में ही बेड हटाकर, कई टुकड़ियों में अदा की गई।

बसें फ़र्ज़ तक आती रहीं, जिससे बाद में आने वाले ह़ज मुसाफ़िरों को दिक्कतों का सामना करना पड़ा क्योंकि बेड कुछ कम पड़ गए थे। कशमकश के साथ सभी को एडजस्ट किया गया। उस रात शायद ही कोई सो सका हो। तहज्जुद की नमाज के बाद फ़र्ज़ भी ईशा की तरह ही टेंट में ही अदा की गई।

टॉयलेट और वजू के लिए ज़रूरत से कम इंतजाम होने की वजह से लंबी लाइनें लग रही थीं। कुछ देर बाद ही हमारे टेंट में नाश्ता आ गया – मूँग की दाल और रोटी, साथ में चीज, जैम, सेब और संतरा। दाल गर्म और अच्छी थी। नाश्ता करके लोग सो गए। मैं भी 10 के बाद ही उठा। ख्वातीन का टेंट अलग, सामने ही था।

जुहर और असर की नमाज मिना कैंप में ही अदा की। दोपहर का खाना जुहर बाद खाया, जिसमें चिकन का सालन और रोटी थी। ज़िंदगी का यह मंज़र हमें सब्र और इबादत के दरमियान तवाज़ुन बनाना सिखा रहा था।

"अत्तार हो, रूमी हो, राजी हो, गजाली हो
कुछ हाथ नहीं आता बे–आह–ए–सहरगाही"

मिना – दुनिया की अज़ीम तरीन ख़ेमा-बस्ती (Tent City)

मिना को दुनिया की सबसे बड़ी 'टेंट सिटी' कहा जाता है। तकरीबन 20 लाख से जायद (ज़्यादा) लोग यहाँ 8 से 12

ज़िलहिज्जा तक कियाम करते हैं। यह बस्ती साल भर खामोश रहती है और हज के 5 दिनों में अपनी रौनक़ों के साथ आबाद हो जाती है।

- <u>फ़ायरप्रूफ़ ख़ेमे (Teflon-Coated) :</u> 1997 के बड़े हादसे के बाद सऊदी हुकूमत ने पूरे मिना को इन जदीद (Modern) और आग से महफ़ूज़ ख़ेमों में तब्दील कर दिया। सफेद रंग न सिर्फ़ सुन्नत है बल्कि यह गर्मी की शिद्दत को भी कम करता है।
- <u>मकतब और नज़्म (Organization) :</u> लाखों की भीड़ में अपना रास्ता ढूँढना एक बड़ा मरहला होता है। इसीलिए मकतब (ँवदम) सिस्टम और रंगीन झंडों (Flags) का इस्तेमाल किया जाता है ताकि हाजी रास्ता न भटकें।
- <u>हज की मशक्कत (Hardship) :</u> असली "हज की रूह" मिना की पैदल चलने वाली उन गलियों में छिपी है। उमरा में सहूलियतें होती हैं, लेकिन मिना में वह 'मशक्कत' है जो बंदे को अल्लाह के करीब ले जाती है।
- <u>इत्तेहाद (Unity) :</u> मिना के एक छोटे से खेमे में जब अलग–अलग देशों और ज़बानों के लोग एक साथ ज़मीन पर बैठते हैं, तो वहाँ से 'इंसानी भाईचारे' का वह सबक मिलता है जो दुनिया की कोई किताब नहीं सिखा सकती।

मिना की गलियों में जब लाखों हाजी एक साथ 'लब्बैक' पुकारते हुए जमरात की तरफ़ बढ़ते हैं, तो वह मंज़र ऐसा लगता है जैसे कोई सफेद समंदर लहरें मार रहा हो।

एक छोटा सा नुक़्ताः मिना को 'मिना' इसलिए कहा जाता है क्योंकि 'मना' का अरबी में मतलब होता है 'तमन्ना करना' या 'खून बहाना' (कुर्बानी के हवाले से)। यहाँ ह़ज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की सुन्नत और ह़ज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम की कुर्बानी की यादें जुड़ी हैं।

मस्जिद अल-ख़ैफ़ - अम्बिया की मस्जिद

असर बाद बेगम के साथ मस्जिद अल–ख़ैफ़ की ज़ियारत के लिए निकले। यह वाहिद और काफी बड़ी तारीख़ी मस्जिद है जो जमरात से काफी पास में है। मेरी यह राय है कि खास तौर पे ह़ज कमेटी के हाजियों को मिना रिहाइश के दौरान इस मस्जिद में ज़्यादा वक़्त गुजारना चाहिए, इससे रूह़ानी लुत्फ ह़ासिल होगा।

इस मस्जिद की सबसे बड़ी फजीलत यह है कि यहाँ 70 अम्बिया–ए–किराम अलैहिमुस्सलाम ने नमाज अदा की है। इसी निस्बत से इसे 'अम्बिया की मस्जिद' भी कहा जाता है। हुजूर–ए–अकरम ﷺ ने अपने आख़िरी ह़ज (हुज्जतुल–विदा) के मौके पर मिना में इसी मुक़द्दस मुकाम पर कियाम फ़रमाया था और यहीं नमाज अदा की थी। अरबी ज़बान में '**ख़ैफ़**' उस जगह को कहते हैं जो दो पहाड़ों के दर्मियान थोड़ी ऊँचाई पर वाकेय हो। चूँकि यह मस्जिद पहाड़ के दामन और वादी के ऊपरी हिस्से पर तामीर की गई है, इसीलिए इसका नाम **'मस्जिद-ए-ख़ैफ़'** पड़ा।

मस्जिद अल–ख़ैफ़ हमारे टेंट के पास ही, तकरीबन 1 मील से कम ही दूरी पर थी। पहले मस्जिद के पास ही

'अल–बैक' से स्नैक्स खाकर थोड़ी तवानाई ह़ासिल की, उसके बाद मस्जिद में मगरिब की नमाज बाजमाअत अदा की।

<u>अ़राफ़ात की तरफ़ – रूह़ानी सफ़र का सबसे बड़ा पड़ाव</u>

नमाज के फौरन बाद कैंप के एक साथी की कॉल आई कि वापस आ जाएँ, बसें अ़राफ़ात निकलने के लिए आ रही हैं। हम फौरन अपने कैंप को निकले, मगर जिस रास्ते से आए थे, वह सऊदी इंतजामकारों ने बंद कर दिया था। काफी घूम कर जाने को कहा गया, जिससे बड़ी गुस्सा लगी। इन इंतजामकारों को कोसते हुए हम कैंप को रवाना हुए। अब जो रास्ता 1 मील से कम था, वह 3 मील से भी ज़्यादा हो गया था।

ईशा के वक़्त कैंप पहुँचे। खैर, बसें अभी नहीं आई थीं, लेट थीं। खाने में बिरयानी थी। खाने के बाद ईशा की नमाज पढ़ के लेट गए, मगर सो नहीं सके। अ़राफ़ात के लिए बसें रात 12 बजे आईं। बसों में पहुँचने के लिए लंबी लाइन और थोड़ी मशक्कत करनी पड़ी। करीब 1 बजे के बाद हम बस तक पहुँचे। बस भरी थी, खैर, हम दोनों ने खड़े होकर अ़राफ़ात तक सफ़र किया। रास्ते भर हम तल्बिया (**"लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक"**) पढ़ते जा रहे थे। दिलचस्प बात यह रही कि बस के ड्राइवर (जो शायद अरब ही था) ने अपने साउंड सिस्टम से ही तल्बिया लगा रखा था।

यह अ़राफ़ात तक का एक बेहद रूह़ानी सफ़र था। रास्ते भर हम तल्बिया पढ़ते रहे और अपनी लब्बैक की सदाओं को बुलंद कर इस बड़े मैदान में ह़ाज़िरी की गवाही देते रहे। रास्ते में बहुत जाम नहीं था, इसलिए 1 घंटे में हम अ़राफ़ात कैंप तक पहुँच गए। अल्ह़म्दुलिल्लाह! तकरीबन 2:30AM तक हम अपने

अ़राफ़ात कैंप को पहुँच चुके थे। शुक्र है पाक परवरदिगार का जिसने आज यह दिन दिखाया, जिसको लफ़्ज़ों में बयान करना शायद मुमकिन नहीं। कल्ब (दिल) की क्या कैफ़ियत थी, वह ना–काबिले–बयां थी। इस मंज़र को देखते हुए यह शेर जेहन में गूँज उठाः

‘‘काफिला हो गया ताजा, जिया-ए-हरम से
इश्क को फिर मिला है सुर्ख-रू होने का मुकाम!’’

11- अ़राफ़ात की सिसकियाँ ग़ज़ा के मज़लूमों के लिए उठी एक फरियाद

अ़राफ़ात के टेंट में तहज्जुद के बाद फ़र्ज़ की नमाज बाजमाअत कैंप में ही हुई। मिना के मुकाबले यहाँ टेंट बड़े थे और तंग भी कम थे, जिससे थोड़ी राहत महसूस हुई। ख़्वातीन के कैंप कुछ फासले पर ही थे।

कुछ देर लेटने के बाद, हम लोगों ने मस्जिद–ए–निमराह जाने के बारे में चर्चा की। हमारे रूम के 2 साथी भी जाना चाह रहे थे। वहीं, कुछ लोग जबल–ए–रह़मत जा रहे थे जो कैंप से तकरीबन 1 मील दूर थी। अल्लाह की रह़मत का तसव्वुर और हर तरफ़ फैली जायरीन की भीड़, रूह को एक अजीब सुकून दे रही थी।

मस्जिद-ए-निमराह की तरफ़ - एक यादगार सफ़र

मस्जिद–ए–निमराह जाने के लिए वहाँ मौजूद उन लोगों का मशवरा था जो पहले ह़ज कर चुके थे कि 'जगह नहीं मिलेगी'। मगर हम तीन लोग तकरीबन 8:30 बजे सुबह मस्जिद–ए–निमराह को निकल पड़े। कैंप से मस्जिद–ए–निमराह की दूरी 2 मील से कुछ कम थी।

मिना में मिले छाते के साथ हम निकले, तल्बिया पढ़ते जा रहे थे। रास्ते भर जूस, पानी, बिस्किट, और नाश्ते की किट छाता देने वालों का ताँता लगा था। सऊदी पुलिस हाजियों पर पानी स्प्रे कर रही थी, और वह भी बड़े ही मुहब्बत के साथ।

मंजर बड़ा दिलकश था, और उम्र भर न भूलने वाला। इस रूह़ानी कैफ़ियत का असर यह था कि न तो धूप का एहसास था

और न ही चलने की थकान महसूस हो रही थी। 1 घंटे की चहल–कदमी के बाद हम मस्जिद–ए–निमराह में थे।

मस्जिद-ए-निमराह - अ़राफ़ात का रूह़ानी मरकज़

मस्जिद–ए–निमराह सफ़र–ए–हज का सबसे अहम और मरकजी मुकाम है। यह मैदान–ए–अ़राफ़ात में वाकेय है और 9 ज़िलहिज्जा (यौम–ए–अराफा) को यहाँ का मंज़र काबिल–ए–दीद होता है।

- **खुत्बा-ए-हज :** यह वह घड़ी होती है जब पूरी दुनिया के मुसलमान एक ही पैग़ाम (अल्लाह की तौहीद) को सुनते हैं। यहाँ जुहर और असर की नमाजें एक साथ (जमा–बैन–अस्सलातैन) अदा की जाती हैं, जो सुन्नत–ए–रसूल ﷺ है।
- **हुज़ूर ﷺ का ख़ेमा :** जिस जगह आप आज मस्जिद का मिम्बर (Imam's place) देखते हैं, वहीं अल्लाह के रसूल ﷺ का ख़ेमा मुबारक लगा था और आपने ऊँटनी 'कसवा' पर सवार होकर वह तारीख़ी खुत्बा दिया था जिसने इंसानी हुकूक़ (Human Rights) की बुनियाद रखी।
- **हुदूद (Boundaries) का मसला :** वादी–ए–उरना (मस्जिद का अगला हिस्सा) अ़राफ़ात की हुदूद से बाहर है। शरीयत के मुताबिक़ वकूफ–ए–अ़राफ़ात (अ़राफ़ात में ठहरना) ह़ज का सबसे बड़ा रुक्न है, इसलिए मस्जिद के पिछले हिस्से में रहना लाजिमी है ताकि ह़ज मुकम्मल हो सके।

- <u>तौसी (Expansion) :</u> सऊदी हुकूमत ने इस मस्जिद को जदीद (Modern) दौर की ज़रूरतों के मुताबिक़ इतना वसी (विशाल) कर दिया है कि अब यह दुनिया की बड़ी मस्जिदों में शुमार होती है। मस्जिद-ए-निमराह के 6 मीनार हैं और इसकी ऊँचाई लगभग 60 मीटर है। इसकी सादगी और वकार (Dignity) दूर से ही नज़र आता है।

मेरी ये राय है अगर चलने की सकत हो, तो अ़राफ़ात को यहाँ ज़रूर आना चाहिए, और यहाँ से ही पैदल मुज़दलिफ़ा को जाना चाहिए। बहुत लुत्फ ह़ासिल होगा इंशाअल्लाह...

<u>मस्जिद-ए-निमराह में तौहीद का समाँ और रूह़ानी कैफ़ियत</u>

मेरे बाक़ी दोनों साथी मस्जिद तक आके वापस कैंप को रवाना हो गए थे। छाता बंद करते वक़्त बाएँ हाथ का अँगूठा जरा सा कट गया और कुछ खून बहने लगा था। मस्जिद के सहन में ही मेडिकल टीम मुस्तैद थी, उन्होंने फौरन खून साफ करके दवा लगाकर बैंडेज चिपका दिया और एक एक्स्ट्रा बैंडेज भी दे दिया।

निमराह में इस साल पिछले सालों के मुकाबले काफी कम लोग पहुँचे थे। पिछले साल के हादसे से सऊदी हुकूमत ने इस साल बहुत सख्ती कर रखी थी, इसलिए लाखों की तादाद में वो हाजी नहीं आ सके जो बिन इजाजत ह़ज मिनिस्ट्री के आ जाया करते थे। सिर्फ़ 16–17 लाख हाजी ही इस साल ह़ज कर रहे थे।

इस साल अल्लाह का करम था कि गर्मी, जो पिछले साल

51–52 डिग्री तक थी, इस साल 44–45 तक ही रही।

बहरहाल, मस्जिद–ए–निमराह में 10 बजे से पहले ही पहुँच चुके थे। तब से लेकर जवाल तक तल्बिया का जो समाँ बँधा, वो दिल की गहराइयों में समा गया था। वह लाखों हाजियों का एक साथ लब्बैक पढ़ना, रहती उम्र अब इंशाअल्लाह दिल में बसा रहेगा। आँखें बेसाख्ता बह चली थीं, जिनको रोकना अब बस में न था। उस रूहानी माहौल को बयां करने के लिए लफ़्ज़ ही कम पड़ रहे हैं। 'लब्बैक' की सदा, सीधे दिल में उतर रही थी।

अराफ़ात की दुपहरी - हकीकत और बेबसी

जवाल से पहले उम्मत के 'सुपरपावर' मुल्क से आए हमारे हमसाया भाइयों में बड़ी फ़िक्र थी। वह 4–5 लोग अपने मुल्क के मुफ्तियान–ए–किराम से एक बहुत अहम मसले पर राय या कहें 'फतवा' माँगने में मसरूफ थे। अहम मसला यह था कि वह इमाम के पीछे 2 रकात पढ़ें या 4 पूरी करें या दोबारा पढ़ें। आधा घंटा से ज़्यादा वह इस पर मसरूफ रहे। नतीजा क्या निकला, अल्लाह ओ आलम। मुझे इस पर कोफ्त हो रही थी। मैंने उनसे बात करते हुए कहा, 'मई में हुई झड़प के दौरान आपका मुल्क भले ही तीन राफेल गिराने का शोर मचा रहा था, लेकिन हकीकत यह है कि आपने एटम बम और बड़ी दूरी मारने वाले मिसाइल सिर्फ़ अपने को बचाने के लिए बनाए हैं। उधर डेढ़ साल से ग़ज़ा के मज़लूम अल्लाह को जानों के नज़राने पेश कर रहे हैं और पुकार रहे हैं कि कोई है जो जालिम का हाथ पकड़ ले। एक मर्कवा गिराना तो दूर, ज़बानें तक सिली हुई हैं। उम्मत

है कहीं या सिर्फ़ बातों–तकरीरों में?

खामोश इन पड़ोसियों के पास जवाब नहीं था।

मैदान-ए-अ़राफ़ात - खुत्बा और हकीकत

जवाल होते ही खुत्बा–ए–हज शुरू हुआ, जिसे शेख डॉ. सालेह बिन अब्दुल्ला बिन हुमैद अंजाम दे रहे थे। वह एक तह़रीर–शुदा खुत्बा था जिसे हुकूमत की जानिब से लफ़्ज़–ब–लफ़्ज़ पढ़ना था।

20 मिनट के खुत्बे में से 19 मिनट रिवायती बातों और इंतजामिया की तारीफों में गुजर गए। फिलिस्तीन और दुनिया के मज़लूमों के लिए महज़ चंद सेकंड की दुआ हुई और फिर शाही खानदान के हक में दुआ के साथ खुत्बे का इख़्तिताम हुआ।

इस लम्हे की कुछ गहरी बातें :

- **उम्मत की उम्मीदें :** अ़राफ़ात का खुत्बा पूरी दुनिया के मुसलमानों के लिए एक 'गाइड' की तरह होता है। जब दुनिया में मुसलमान (खासकर ग़ज़ा और फिलिस्तीन में) इतने मुश्किल दौर से गुजर रहे हों, तो एक आम मुसलमान की रूह यह चाहती है कि मिम्बर–ए–रसूल ﷺ से उनकी बेबसी पर कोई पुरअसर बात कही जाए।
- **मशक्कत और रूहानियत :** एक तरफ़ वह शाही इंतजाम और नपे–तुले अल्फ़ाज़ थे, और दूसरी तरफ़ लाखों हाजियों की वह तड़प जो तपती धूप में अपने भाइयों के लिए रो रहे थे। शायद अल्लाह को उन कागज़ी अल्फ़ाज़ से ज़्यादा उन 'अश्कबार आँखों' की

दुआएँ पसंद आई होंगी जो मैदान के किसी कोने में खामोशी से रो रही थीं।

- <u>**एक रूहानी तसल्ली :**</u> खुत्बा भले ही किसी भी रंग का हो, लेकिन अ़राफ़ात की ज़मीन पर माँगी गई हमारी इन्फ़रादी दुआए और वह सिसकियाँ जो हमने ग़ज़ा के नाम पर भरी थीं, वह किसी सरकारी सेंसरशिप की मोहताज नहीं। अल्लाह दिलों के हाल और नीयतों को बेहतर जानता है।

<u>अ़राफ़ात की दुआएँ - दिल की गहराइयों से</u>

अ़राफ़ात के उस रूहानी माहौल में, जब सारी दुनिया एक तरफ़ और रब की जात एक तरफ़ थी, मेरी दुआ़ओं का एक अहम हिस्सा यह था कि...

"या अल्लाह! आज अ़राफ़ात के इस मैदान में लाखों तेरे बंदे लब्बैक कह रहे हैं, लेकिन मेरा दिल उन मलबों में अटका है जहाँ तेरी उम्मत के मासूम बच्चे, बेबस औरतें और कमजोर बूढ़े तड़प रहे हैं। या अल्लाह! उन अस्पतालों के मंज़र याद आ रहे हैं जहाँ जख्मों का इलाज करने वाले डॉक्टर्स खुद मलबे के नीचे हैं, और उन जाँबाज सहाफियों के चेहरे, जो अपनी जान हथेली पर रखकर जालिम के जुल्म की दास्तान दुनिया को सुना रहे थे और आज खुद खामोश कर दिए गए। उनकी शहादतों को अपनी बारगाह में कबूल फ़रमा ले। उनकी कुर्बानी को जाया न कर, और उनकी रूहों को आला मुकाम अता फ़रमा। ऐ मेरे मालिक! ये निहत्थे आम शहरी आज जालिम की तोपों और टैंकों की जद में हैं। या अल्लाह! ये हाथ जो आज तेरी बारगाह में उठे हैं, इनका मान रख ले! हम तो बेबस हैं, पर तू तो

कादिर–ए–मुतलक है। हम में से ही ऐसे लोग पैदा कर जो इन जालिमों के हाथ पकड़ सकें, जो जुल्म को रोकने की कुव्वत रखते हों। हमें उस मुनाफिकत से निकाल जो हमें तमाशबीन बनाए बैठी है। ऐ अल्लाह! उन जियालों को जो सीना तान कर डटे हैं जालिम के सामने, उनको इस्तकामत अता कर। दुश्मनों के दिलों में उनका खौफ पैदा कर। या अल्लाह! वो अपनी जानों के नज़राने से उम्मत का फ़र्ज़–ए–किफाया अदा कर रहे हैं। मेरे मालिक! उनको साबित–कदम रख, गैब से मदद फ़रमा दे। ऐ रब्बे–करीम! तू अबाबील से हाथियों को कुचलने पर कादिर है। ऐ अल्लाह! तुझे तेरे जलाल का वास्ता, मेरे परवरदिगार करम फ़रमा दे। आमीन!"

दुआओं का सिलसिला सिर्फ़ उम्मत तक महदूद नहीं था। मैं अपनी जात के लिए, अपने अहल–ए–खाना, बच्चों, रिश्तेदारों और दोस्तों के लिए, और उन सभी के लिए जिन्होंने दुआओं के लिए कहा था, अपने रब को मनाने में लगा था। मैं उस देहाती की तरह मचल कर अपने रब से माँग रहा था, ऐ मेरे मालिक! यह गदा यह सवाली माँगता–माँगता अब तेरे दर तक आ गया है। अब हमारी झोली भर देना मेरे आका! दिल में एक अजीब सा खौफ और उम्मीद का मंज़र था। मैं गुनाहों की गठरी लाद कर आया हूँ मालिक, माफ कर देना नहीं तो मैदान–ए–महशर में जलील और नाकाम हो जाऊँगा यह तेरा गुनहगार बंदा।

अ़राफ़ात का मैदान गवाह था कि एक तड़पता हुआ दिल अपने रब की रह़मत की भीख माँग रहा था। आँखें ऐसे बह रही थीं मानो बरसात का कोई टूटता हुआ बादल हो। वह आँसू सिर्फ़ पानी की बूँदें नहीं थे, बल्कि रूह के अंदर जमा हुए गुनाहों के बोझ और रब की मुहब्बत के एहसास का निचोड़ थे जो ज़मीन

पर गिर रहे थे। या अल्लाह! तू हमें साबित–कदम रखना। जब खात्मा हो, तो ईमान पर ही हो। मेरे मालिक, मेरा ईमान सलामत रखना। मेरी जान, मेरे माल, मेरी औलाद को अपने कामों में ले कर कामयाब कर दे मेरे मालिक, आमीन!

"मेरी ज़िंदगी का मक़सद तेरे दीन की सरफराजी
मैं इसी लिए मुसलमान, मैं इसी लिए नमाजी"

अ़राफ़ात से रवानगी – मुजदलिफ़ा की तरफ़

जवाल से लेकर तकरीबन 4:30 बजे तक, मैं मुसलसल अपने रब के हुजूर गिड़गिड़ाता रहा। अ़राफ़ात के मैदान में रब से गिड़गिड़ाने के बाद, अब वापसी का वक़्त था। कैंप पहुँचने तक शाम के 6 बजने वाले थे। बेगम कैंप में ही थीं, इसलिए उन्हें साथ लेकर बस की तरफ़ बढ़ना था।

मगरिब के फौरन बाद ही बसों का मुज़दलिफ़ा के लिए निकलना तय था, इसलिए मगरिब से पहले ही लोग बसों पर बैठने लगे थे। हम भी बस में बैठ गए। बसों की भारी तादाद की वजह से उनका चलना बहुत धीरे–धीरे हो रहा था, जैसे रेंग रही हों।

काफी इंतजार और जद्दोजहद के बाद, हम रात 9 बजे से कुछ पहले मुज़दलिफ़ा पहुँच चुके थे। यह एक नए पड़ाव की शुरुआत थी।

मुजदलिफा की मुक़द्दस रात – खुले आसमान के नीचे

मुजदलिफा पहुँचकर, सड़क किनारे जहाँ दरियाँ बिछी थीं, हमने अपना थोड़ा सा सामान वहीं रख दिया। अ़राफ़ात कैंप से

मिली बिरयानी को हम दोनों ने मिलकर खाया। मगरिब और ईशा की नमाज एक साथ पढ़ने के बाद हम वहीं लेट गए। दो दिन से लगातार जागे होने की वजह से, तीन घंटे की नींद आ गई, जो तरोताजा कर देने वाली थी।

रात के करीब 2:30 बजे हम उठे, वजू किया और तहज्जुद की नमाज पढ़ी। इसके बाद, फ़र्ज़ की नमाज के लिए मस्जिद मशअर अल–हराम की तरफ़ निकले। यह मस्जिद हमारी कियाम की जगह से करीब एक मील दूर थी। इस मुक़द्दस मस्जिद का जिक्र कुरआन में भी है, जहाँ अल्लाह के हबीब ﷺ ने नमाज अदा की थी।

मस्जिद के अतराफ़ का मंज़र बहुत शानदार था। चारों तरफ़ ज़मीन पर रबर जैसी कोई चीज बिछाई गई थी। अगर निमराह से पैदल आया जाए, तो यह मस्जिद पहले ही पड़ती है। यहीं हाजी कियाम करते हैं। हमने देखा कि वहाँ बड़ी–बड़ी ट्रे में चावल और गोश्त जो सऊदी की बहुत महँगी और खास डिश है – जगह–जगह रखी थी। साथ ही खाने, जूस वगैरह का इतना इंतजाम था कि सुबह फ़र्ज़ के वक़्त भी काफी खाना बचा हुआ था।

बेगम को मस्जिद के अंदर जगह मिल गई, लेकिन मर्दों के लिए मस्जिद भर चुकी थी, इसलिए मैंने बाहर ही नमाज पढ़ी। नमाज और दुआ के तुरंत बाद, मैं अपनी कियाम की जगह की तरफ़ लौटा, जहाँ आगे के सफ़र का सामान रखा था।

मस्जिद–ए–मशअर अल–हराम – मुज़दलिफ़ा की बरकत

यह मस्जिद मुज़दलिफ़ा में वाकेय है, जो मिना और

अ़राफ़ात के दर्मियान का रास्ता है। ह़ज के दिनों में (9 और 10 ज़िलहिज्जा की दर्मियानी रात) जब हाजी अ़राफ़ात से वापस लौटते हैं, तो इसी मैदान में खुले आसमान के नीचे रात गुजारते हैं।

कुरआन–ए–पाक में जिक्र : यह इस मुकाम की अजमत की सबसे बड़ी दलील है। अल्लाह तआ़ाला ने सूरह अल–बकरह (आयत 198) में खास तौर पर हुक्म दिया:

فَإِذَآ أَفَضْتُم مِّنْ عَرَفَٰتٍ فَٱذْكُرُوا۟ ٱللَّهَ عِندَ ٱلْمَشْعَرِ ٱلْحَرَامِ ۖ وَٱذْكُرُوهُ كَمَا هَدَىٰكُمْ ۚ

''फिर जब तुम अ़राफ़ात से लौटो तो मशअर–ए–हराम के पास अल्लाह का जिक्र करो और उस तरह जिक्र करो जिस तरह उसने तुम्हें हिदायत दी है...''

- **हुजूर ﷺ का वकूफ :** नबी–ए–करीम ﷺ ने यहाँ न सिर्फ़ कियाम फ़रमाया, बल्कि फ़र्ज़ की नमाज के बाद तब तक जिक्र–ओ–अजकार और दुआएँ कीं जब तक कि सफेदी (सुबह की रौशनी) जाहिर न हो गई।
- **नाम की वजह (Etymology) :** 'मशअर' का मतलब है 'निशानी' या 'शऊर' (Awareness)। यहाँ इंसान को अपनी हकीकत और खुदा की बड़ाई का सही शऊर ह़ासिल होता है। और 'अल–हराम' क्योंकि यह हुदूद–ए–हरम का हिस्सा है।
- **सादगी :** मुज़दलिफ़ा का वह अमल, जहाँ शहंशाह और फकीर सब एक ही ज़मीन पर सोते हैं और जमरात के लिए कंकड़ियाँ चुनते हैं, वह इंसान के अंदर से तकब्बुर (घमंड) को खत्म कर देता है।

मुजदलिफा की वह रात 'मुसावात' (Equality) की बेहतरीन मिसाल है। जहाँ न कोई ख़ेमा (Tent) होता है, न कोई तक्सीम, बस अल्लाह के बंदे होते हैं और जिक्र की सदाएँ।

कंकड़ियाँ चुनना - शैतान के ख़िलाफ़ तैयारी

मुजदलिफा से हमें शैतान को मारने के लिए कंकड़ भी लेने होते हैं। फी हाजी 49 कंकड़ लेने होते हैं। पहले दिन यानी 10 ज़िलहिज्जा को सिर्फ़ बड़े शैतान को 7 कंकड़ मारने होते हैं। दूसरे दिन यानी 11 ज़िलहिज्जा को तीनों शैतानों को 7–7 कंकड़ मारने होते हैं। इसी तरह तीसरे दिन यानी 12 ज़िलहिज्जा को भी तीनों शैतानों को 7–7 कंकड़ मारने होते हैं। हमने 49 से जायद कंकड़ियाँ एहतियातन एक पानी की बोतल में भर लीं।

- **कंकड़ का साइज** : सुन्नत के मुताबिक़ ये कंकड़ चने के दाने या खजूर की गुठली के बराबर होने चाहिए। बोतल में इन्हें जमा करना एक बहुत ही अक्लमंदी वाला तरीका है ताकि भीड़ में ये खो न जाएँ।
- नफ़्स पर ज़र्ब : शैतान को कंकड़ मारना असल में अपने अंदर की बुराइयों और गुरूर को कुचलने की एक निशानी (Symbol) है। मुज़दलिफ़ा की उस रात में जब लाखों लोग ज़मीन पर झुककर कंकड़ चुन रहे होते हैं, तो वह नज़ारा ऐसा लगता है जैसे कोई लश्कर अपनी अगली जंग (बुराई के ख़िलाफ़) की तैयारी कर रहा हो।

मिना की तरफ़ पैदल सफ़र – सब्र और जज़्बा

मस्जिद अल–मशअर अल–हराम में फ़र्ज़ की नमाज और दुआ के बाद, अपनी कियामगाह पर दोबारा पहुँचने में थोड़ी दिक़्क़त हुई। भीड़ इतनी थी कि सब कुछ एक जैसा लग रहा था। खैर, अल्लाह का नाम लेकर अपनी जगह तलाशी और पीठ पर बैग टाँग कर हम दोनों जमरात के लिए निकल पड़े।

सुबह हो चुकी थी, सूरज की पहली किरणें मुज़दलिफ़ा की वादी को रौशन कर रही थीं। चारों तरफ़ हाजियों का एक सैलाब था जो मिना की तरफ़ बढ़ रहा था। यह पैदल सफ़र थका देने वाला था, लेकिन दिल में एक अजीब सा सुकून और शैतान को कंकड़ मारने का जज्बा था।

12- जमरात का सफ़र -सफेद लिबास, सफेद उम्मीदें

मुजदलिफा से जमरत का तकरीबन 4 मील का सफ़र था, जो सिर्फ़ पैदल ही किया जा सकता था। चारों तरफ़ हजारों–लाखों हाजियों का एक सैलाब था। जहाँ तक नज़रें जा रही थीं, सिर्फ़ सफेदपोश ही नज़र आ रहे थे – सफेद चादरों में लिपटे लोगों का वह बड़ा शानदार मंज़र दिल को छू रहा था। एक जम्मे–गफीर उस भीड़ में न कोई छोटा था, न बड़ा, सब एक ही लिबास में अपने रब के हुजूर हाजिर थे।

रास्ते भर सऊदी पुलिस का सुलूक बहुत ही क़ाबिल.ए.तारीफ था। वे पूरे रास्ते मुहब्बत से हाजियों को 'ईद मुबारक' कहते जा रहे थे, और गर्मी से राहत देने के लिए पानी का स्प्रे भी कर रहे थे। उनका यह खुलूस उस कठिन सफ़र को आसान बना रहा था।

भीड़ भले ही बहुत ज़्यादा थी, लेकिन दिलों में एक अजीब सी ताकत थी। हम सब 'लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक' की सदाएँ बुलंद करते हुए जमरात की सिम्त चले जा रहे थे। वह आवाज सिर्फ़ ज़बान से नहीं, बल्कि पूरे वजूद से निकल रही थी। 'मैं हाजिर हूँ, ऐ अल्लाह! मैं हाजिर हूँ!' की वह सदा पूरे माहौल को रूहानी बना रही थी। न पैरों की थकान का एहसास था, न गर्मी की शिद्दत का, बस एक ही धुन थी – जमरत पहुँचकर शैतान को कंकड़ मारना और अपने रब की रजा ह़ासिल करना।

पैदल चलते हुए मेरे पैरों में दर्द शुरू हो गया था, लेकिन जमरात पहुँचने का जज्बा कम नहीं था। रास्ते में मैंने एक हिंदुस्तानी फैमिली को देखा, जो अपनी करीब 60 वर्षीय वालिदा

को व्हीलचेयर पर ले जा रहे थे। मैंने उनसे व्हीलचेयर ले चलने को कहा, तो वे तैयार हो गए।

अजीब बात थी, व्हीलचेयर को हाथों से धकेलने में मेहनत तो लग रही थी, लेकिन पैरों के दर्द का एहसास काफी कम हो गया था, क्योंकि पूरा जिस्म हरकत में था और रूह को सुकून मिल रहा था। तकरीबन एक मील मैंने उन्हें पहुँचाया। इसके बाद, एक बहुत बुजुर्ग (करीब 70–75 साल के) शख़्स अपनी उतनी ही उम्र की खातून को व्हीलचेयर पर ले जा रहे थे। वह खातून करीब 90–95 किलो की होंगी। मैंने तुरंत उनसे व्हीलचेयर ले ली। वह औरंगाबाद की फैमिली थी। मैं उन बुजुर्गों को 2 मील तक आगे के सफ़र में साथ ले गया। यह थकान नहीं, बल्कि मेरे लिए एक रूहानी इ़बादत थी।

जमरात - शैतान की रुसवाई और रजा-ए-इलाही

हम भी सीधे जमरात की तरफ़ चल दिए। जमरात में कंकड़ मारने (रमी) वालों का एक सैलाब उमड़ रहा था। हमने ग्राउंड फ्लोर से जमरत में दाख़िल होकर, ह़ज़रत इब्राहीम (अ़लै0) की सुन्नत को दोहराते हुए सिर्फ़ बड़े शैतान (जमरात–उल–अकबा) को कंकड़ मारे।

दिल ने कहा कि यह तो महज़ एक अलायमती (symbolic) शैतान है, असल शैतान तो वजूद के अंदर समाया हुआ है। रमी का असल मक़सद तो उस अंदरूनी दुश्मन को बाहर निकालना था। हर कंकरी के साथ अल्लाह से एक नया अहद (वादा) करना था।

जब मैंने पहला अलायमती कंकर फेंका, तो दिल ने सवाल

किया –

- क्या अब मेरा दिल ह़सद (जलन) से पाक होगा?
- दूसरे पर इरादा किया कि अब ज़िंदगी में झूठ की कोई जगह नहीं होगी।
- तीसरे पर कीना (बदला/रंजिश) से पाक होने का वायदा किया,
- चौथे पर बुग़्ज और नफरत को,
- पाँचवीं कंकरी के साथ हुक़ूक़-उल-इबाद (बंदों के हक) को अदा करने का अ़ज़्म किया
- और छठे पर तकब्बुर (घमंड) की दीवार को गिरा देने का वायदा अपने रब से किया। और जब आख़िरी कंकरी मारी,
- तो रूह पुकार उठी - अब मैं अपने रब का मुकम्मल फ़रमाँबरदार रहने का अहद करता हूँ।
- या मेरे रब मेरे इन तौबा और आपसे किये इन अहद पर कायम रहने वाला बना दे आमीन

इस तरह मेरी यह रमी मुकम्मल हुई।

मैंने उन बुजुर्ग खातून की व्हीलचेयर थामी हुई थी, उनके शौहर ने अपनी और अपनी बीवी की तरफ़ से 7–7 कंकड़ मारे। इस अ़ज़ीम इ़बादत के बाद, मैं अपनी बेगम के साथ भीड़ से बाहर निकलकर सुस्ताने लगा। अल्लाह का शुक्र था कि सुबह 8 बजे तक यह अमल मुकम्मल हो चुका था। साथ ही, जो कूपन लिया था, उसके मुताबिक़ हमारी कुर्बानी भी हो चुकी थी, और अल्ह़म्दुलिल्लाह ह़ज का एक बड़ा अरकान मुकम्मल हुआ।

अ़ज़ीज़िया वापसी - सब्र का इम्तिहान

जमरात के अमल के बाद, हमारा अगला इरादा हल्क

कराकर रूम (अज़ीज़िया) जाने का था। जिस्म पर थकान और आँखों पर नींद पूरी तरह से हावी थी। हम जमरात से बिन दाऊद मॉल की तरफ़ बढ़े, जो करीब एक मील से कुछ कम दूरी पर था, जहाँ से हमें अज़ीज़िया के लिए टैक्सी मिलनी थी।

सुबह के 9 बजे हम बिन दाऊद पहुँच चुके थे, लेकिन यहाँ टैक्सी वालों के भाव आसमान छू रहे थे। अज़ीज़िया की दूरी 3 मील से भी कम थी, लेकिन भाड़ा 1000 रियाल (करीब ₹23,000) माँगा जा रहा था, जो कि बहुत ज़्यादा था।

हालात को देखते हुए, हम बिन दाऊद के एंट्री गेट पर ही बैठ गए और वहीं लेटकर इंतजार करने लगे। करीब 3 घंटे के इंतजार के बाद, जब हाजियों का हुजूम कुछ कम हुआ, तब हमें 100 रियाल में एक टैक्सी मिली। तब तक दोपहर के 12 बज चुके थे। हम बिन दाऊद पर पिज्ज़ा और जूस ले चुके थे, इसलिए भूख ज़्यादा नहीं थी। दोपहर 1 बजे के करीब हम अपने रूम अज़ीज़िया पहुँच गए। वहाँ पहुँचकर हल्क करवाया, नहाया, नमाज पढ़ी और फिर नींद की आगोश में समा गए।

मिना में चहल-क़दमी - अल्लाह का रिज़्क़

अज़ीज़िया में आराम करने के बाद, असर, मगरिब और ईशा की नमाज अदा की। ईशा के बाद हम वापस मिना के लिए निकले। टैक्सी वाले ने हमें गलत जगह उतार दिया, जिसकी वजह से काफी पैदल चलना पड़ा, तब कहीं जाकर मिना कैंप पहुँचे। हालाँकि, हम कैंप न जाकर मिना में ही चहल–कदमी करने लगे। हमारे कैंप में खाना और चाय का मेयार (standard) कुछ खास नहीं था, इसलिए हम अक्सर दूसरे कैंपों में चले जाया

करते थे। इस चहल–कदमी का एक अ़ज़ीम फायदा यह भी था कि दुनिया के मुख्तलिफ खित्तों, मुल्कों और ज़बानों से ताल्लुक रखने वाले अपने उम्मती भाइयों से मिलने और गुफ्तगू करने का मौक़ा मिलता रहा। यह मेल–जोल हमें एक उम्मत और इस्लामी भाईचारे (Brotherhood) का अमली एहसास कराता था।

वहाँ देख कर यह यकीन पुख़्ता हो गया कि हुक्मरानों ने भले ही अपने सियासी मक़ासिद के लिए उम्मत को सरहदों में बाँट दिया हो, मगर एक आम मुसलमान के अंदर आज भी मुहब्बत और इस्लामी उखूवत (भाईचारे) के अनासिर (Elements) मौजूद हैं।

कभी उनसे कुछ माँग कर खाना, तो कभी जो अपने पास हो वो उन्हें पेश करना – यह सिर्फ़ लेन–देन नहीं था, बल्कि आपस में मुहब्बत का इजहार और अपनी अना को मारने का एक जरिया था। वहाँ यह एहसास बार–बार जागता था कि आप अपने शहर या इलाके के कितने ही बड़े शख़्स क्यों न हों, लेकिन अल्लाह की इस बस्ती में आपकी हैसियत सिर्फ़ एक 'दरवेश' की है। यहाँ न कोई बड़ा है, न कोई छोटा, बस सब उसके दर के सवाली हैं।

अल्ह़म्दुलिल्लाह, उस चहल–कदमी के दौरान हमें एक कैंप में चाय और केक नसीब हुआ, तो दूसरे कैंप में बिरयानी! रब की ऐसी नेअमतें थीं कि दिल बाग–बाग हो गया। देर रात हम अपने कैंप वापस आ गए।

मिना का वह कैंप सबसे आख़िरी 'D' कैटेगरी का था – टेंट बहुत तंग थे, वॉशरूम की कमी थी और खाने का मेयार औसत सा था। लेकिन, अल्लाह का शुक्र है कि उसने इन मामूली दुश्वारियों के बीच भी सुकून के लम्हे अता किए।

हज कमेटी के इंतजाम और हकीकत

इंडियन हज कमेटी का मिना का इंतजाम बहुत ही औसत किस्म का होता है, जिसे और बेहतर बनाया जाना चाहिए। इसमें हमारी हज कमेटी और उनके अहलकारों की कमियाँ हैं। बड़ी तकलीफ होती है क्योंकि तकरीबन सारे अहलकार ईमान वाले ही होते हैं। इंतजामिया के हवाले से मदीना मुनव्वरा और मक्का मुकर्रमा के तजुर्बा में एक बड़ा फर्क था। मदीना में हाजियों को बाहर से ही खाने का बंदोबस्त करना पड़ता था। इसके बरअक्स, मक्का के अज़ीज़िया (Aziziya) इलाके के फ़्लैट्स में सहूलियतें काफी मुकम्मल थीं। वहाँ साझा किचन (Shared Kitchen), गैस और फ्रिज का मुकम्मल इंतजाम था, जहाँ हज मुसाफ़िर अपनी पसंद और ज़रूरत के मुताबिक़ खुद खाना तैयार कर सकते थे। मक्का की उस मसरूफियत के बीच, अपनों के साथ मिलकर खाना बनाना एक घरेलू सुकून का एहसास दिलाता था। एक बड़ी तब्दीली जो इस साल हुयी, वो ये थी कि हमारे टेंट में AC लगे हुए थे। जबकि, पिछले साल तक इंडियन हज कमेटी के टेंट **'एयर-कूल्ड'** हुआ करते थे। AC लगने से गर्मी से राहत थी।

दूसरी बात, पूरे सफ़र–ए–हज में यानी 40–45 दिनों में से सिर्फ़ मिना के 5 दिन ही हमारी हज कमेटी खाना देने का इंतजाम करती है, जबकि दुनिया की कोई और सरकारी हज कमेटी ऐसा नहीं करती सबके यहाँ हाजियों को खाना देने का मुकम्मल इंतजाम होता है। यह एक बड़ी कमी है।

इसके बरअक्स एक बड़ी अच्छी बात यह है कि हमारी सरकारी हज कमेटी तकरीबन 3.5 लाख प्रिति हाजी फीस ले रही

थी, जबकि प्राइवेट ह़ज ऑपरेटर्स इन थोड़ी सी कमियों को दूर करने के एवज में इसका दोगुना, यानी 6 से 10 लाख रुपये वसूलते हैं। इन प्राइवेट टूर ऑपरेटर्स का यह एक बड़ा मुनाफाखोर कारोबार है।

अल्ह़म्दुलिल्लाह, हमारे गरीब मुल्क का मिडिल क्लास हाजी ह़ज कमेटी की वजह से किफायती तौर पर ह़ज कर पाता है।

13- तवाफ-ए-ज़ियारत - ह़ज का सबसे अहम रुक्न

तवाफ–ए–ज़ियारत (जिसे तवाफ–ए–इफाजा भी कहा जाता है) ह़ज का एक सबसे अहम और रुक्न है। इसके बिना ह़ज मुकम्मल नहीं होता।

यह कब किया जाता है? यह 10 ज़िलहिज्जा को मिना में बड़े शैतान को कंकड़ मारने (रमी), कुर्बानी और सर मुंडवाने (हल्क) के बाद मक्का जाकर किया जाता है। हालाँकि इसे 11 या 12 ज़िलहिज्जा के मगरिब तक भी किया जा सकता है।

- **इसकी अहमियत (रुक्न-ए-हज) :** ह़ज के तीन किस्म के तवाफ़ होते हैं, लेकिन तवाफ–ए–ज़ियारत फ़र्ज़ है। इसके मुकम्मल होने के बाद ही एक हाजी पर वह पाबंदियाँ खत्म होती हैं जो एहराम की वजह से लगी थीं (जैसे मियाँ–बीवी का रिश्ता)।
- **करने का तरीका :** यह आम तवाफ़ की तरह ही काबा के सात चक्कर लगाकर किया जाता है। चूँकि हाजी इस वक़्त तक एहराम खोल चुका होता है और सिला हुआ लिबास पहन लेता है, इसलिए यह तवाफ़ आम कपड़ों में ही किया जाता है।

मिना की मशक्कत, अ़राफ़ात की धूप और मुज़दलिफ़ा की रात गुजारने के बाद, जब हाजी दोबारा 'बैतुल्लाह' (अल्लाह के घर) पहुँचता है, तो उसे ऐसा महसूस होता है जैसे कोई मुसाफ़िर लंबे सफ़र के बाद अपने असल घर लौट आया हो। थकावट के बावजूद काबा को देखकर जो ताजगी मिलती है, वह बयां से बाहर है।

- **एक मशवरा :** 10 ज़िलहिज्जा को ह़रम शरीफ़ में बेइंतिहा भीड़ होती है। बहुत से हाजी जो जिस्मानी रूप से थोड़े कमजोर होते हैं, वे 11 या 12 की रात को तवाफ–ए–ज़ियारत करना पसंद करते हैं ताकि सुकून से इ़बादत कर सकें।

देर रात अपने कैंप पहुँचने के बाद, चंद घंटे ही सो पाए थे। सुबह फ़र्ज़ की नमाज अदा की, चाय और नाश्ता करके हम शेयर्ड टैक्सी से तवाफ–ए–ज़ियारत के लिए हरम की तरफ़ चल पड़े। हमारे साथ बिल्डिंग के पड़ोसी भी थे। अल्ह़म्दुलिल्लाह! तवाफ–ए–ज़ियारत और सई करके यह फ़र्ज़ अरकान इत्मीनान से मुकम्मल हुआ, जो ह़ज का अहम हिस्सा है।

हरम शरीफ से शटल बस के जरिए हम जमरात पहुंचे। इत्मीनान से तीनों शैतानों को कंकड़ियाँ मारीं। रमी का यह अरकान पूरा करने के बाद हम अपने कैंप की ओर रवाना हुए।

रास्ते में हमने फैसला किया कि हम अभी कैंप नहीं जाएंगे। हमारे बाक़ी साथी तो कैंप की तरफ चले गए, लेकिन हम दोनों मस्जिद–ए–ख़ैफ़ में इ़बादत और आराम के लिए रुक गए।

मस्जिद-ए-ख़ैफ़ में इ़बादत और दुआ

मस्जिद–ए–ख़ैफ़ की ठंडी फिजा में सुकून था। जुहर की नमाज और कुछ नफ्ल अदा करने के बाद, हम मस्जिद में ही थोड़ी देर लेट गए। मस्जिद का AC प्लांट बहुत ज़्यादा कूलिंग कर रहा था, जिसकी वजह से हल्की झपकी तो लगी, लेकिन गहरी नींद नहीं आ सकी। बाहर धूप शदीद थी, इसलिए हमने असर की नमाज के बाद मगरिब तक वहीं रुकने का इरादा कर लिया।

असर और मगरिब के दरमियाँ एक बहुत ही जदीद नज़ारा देखा। मस्जिद में इमाम से सवाल–जवाब के लिए वीडियो कॉलिंग कियोस्क लगे थे, जिनमें दुनिया की मुख़्तलिफ़ ज़बानों में सवाल पूछने का इन्तिख़ाब था। मैंने उर्दू में सवाल किया, तो उर्दू ट्रांसलेटर के साथ वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग में सीधे मस्जिद–ए–ख़ैफ़ के इमाम मौजूद थे।मैंने उनसे कोई तकनीकी सवाल नहीं किया, बस ग़ज़ा के मज़लूम फिलिस्तीनियों के हक में दुआ करने की गुजारिश की और कॉल काट दी।

मगरिब की नमाज के बाद हम बाहर निकले। पैरों में दर्द की वजह से बेगम को लेकर मस्जिद के पास के सरकारी अस्पताल चले गए। अल्लाह का शुक्र है कि अस्पताल बहुत साफ–सुथरा था और वहाँ मुफ्त इलाज की बेहतरीन सहूलियात थीं। महज़ 20–25 मिनट में डॉक्टर को दिखाया, क्रीम और दर्द की दवा लेकर हम मिना कैंप की तरफ़ निकल पड़े।

हज की तकमील - रब की रज़ा और सुकून

अस्पताल से कैंप की तरफ़ जाने वाला रास्ता बहुत भीड़भाड़ वाला था। जगह–जगह मेडिकल कैंप लगे थे। मस्जिद–ए–ख़ैफ़ से हमारा कैंप महज़ एक मील से भी कम दूरी पर था, लेकिन इंतजामिया के डायवर्जन की वजह से हमें घूमकर जाना पड़ा। तकरीबन 3 मील का यह फासला एक घंटे से भी ज़्यादा वक़्त में पूरा हुआ।

अल्ह़म्दुलिल्लाह, आज फिर हमने दूसरे मुल्क के कैंप से खाना (मुर्गी–चावल) लेकर खाया और कुछ खाना अपने कैंप भी ले गए। ईशा की नमाज अदा करने के बाद कैंप में चंद घंटे

सोए। फिर सुबह फ़र्ज़ की नमाज के बाद चाय और हल्का नाश्ता करके हम बेगम के साथ जमरात की तरफ़ निकल पड़े।

इस बारे में एक खास बात थी – हालाँकि हमारे कैंप के सभी हाजी 'जवाल' के बाद ही निकलने वाले थे (क्योंकि अहनाफ के नज़दीक जवाल से मगरिब तक का वक़्त शैतान को कंकड़ मारने का होता है), लेकिन मैंने हज ट्रेनर डॉ. अब्दुल वहाब साहब से व्हाट्सऐप पर मसला दर्याफ्त किया। उन्होंने वाजेह किया कि दीगर अइम्मा–ए–किराम के नज़दीक फ़र्ज़ के बाद से ही कंकड़ मारे जा सकते हैं। गर्मी की शिद्दत (45 डिग्री) को मद्देनज़र रखते हुए, हमने सुबह ही कंकड़ मारने का फैसला किया।

सुबह–सुबह जब हम जमरात की तरफ़ निकले, तो बनारस के एक हाजी भी हमारे साथ हो लिए। रस्ता सीधा था और सुबह होने की वजह से भीड़ भी बहुत नहीं थी। महज़ 15–20 मिनट में हम पहुँच गए। हमने तीनों शैतानों को कंकड़ मार कर उन्हें जलील किया और रब्बे–कायनात की किब्रियाई बुलंद की। सुबह के महज़ 7 बजे होंगे और अल्लाह के करम से हज के सभी अरकान पूरे हो चुके थे!

रब का शुक्र अदा करते हुए, हम पैदल ही अज़ीज़िया की तरफ़ चल पड़े। रास्ते में एक बड़ा शानदार नज़ारा था – मुकामी लोग कोल्ड ड्रिंक और जूस बहुत मुहब्बत से पेश कर रहे थे, जो इस सफ़र की थकान को रूहानी खुशी में बदल रहा था।

तकरीबन 1 मील का वह फासला पैदल ही कट गया और पता भी नहीं चला। रोड पर पहुँचकर हमें तीन सवारियों के लिए महज़ 20 रियाल में टैक्सी मिल गई और हम अज़ीज़िया होटल तक पहुँच गए। सुबह 8–8:30 बजे हम अपने कमरे में थे।

इस तरह, ह़ज के सभी अरकान मुकम्मल हो चुके थे। बस अल्लाह जल्ले–शानहू से दुआ है कि इस नाक़िस कोशिश को अपनी बारगाह में कबूल फ़रमा ले। आमीन!

14- विदा की घड़ियाँ और मुड़-मुड़ कर देखता वह दिल

यह मंज़र हर हाजी के दिल की उस कशमकश को बयां करता है, जहाँ एक तरफ़ वतन वापसी की ख़ुशी होती है और दूसरी तरफ़ **'बैतुल्लाह'** (अल्लाह के घर) से बिछड़ने का गम। आँखों का मुड़–मुड़ कर देखना दरअसल रूह का वह खिंचाव है जो उस मुक़द्दस चौखट को छोड़ना नहीं चाहती।

12 ज़िलहिज्जा (8 जून) की शाम तक मैंने अपना **'तवाफ-ए-विदा'** मुकम्मल कर लिया था। कायदा तो यह है कि इसके बाद हरम से रुख्सती हो जानी चाहिए, लेकिन मेरी **मुल्क** वापसी में अभी तीन दिन बाक़ी थे। वापसी से पहले मुझे दो **बार** और तवाफ़ करने की सआ़दत नसीब हुई।

आख़िरकार 11 जून की वह घड़ी आ ही गई जब मुझे आख़िरी बार बैतुल्लाह का दीदार करना था। यह वह लम्हा होता है जिसे बयान करना नामुमकिन है। हरम के दरवाज़ों से बाहर निकलते हुए, गलियों के हर मोड़ और हर कोने से जहाँ–जहाँ से काबा की काली दीवारें और सुनहरा ग़िलाफ़ नज़र आ रहा था, मैं मुड़–मुड़ कर देख रहा था। कदम आगे बढ़ रहे थे, मगर नज़रों का जाविया (Angle) पीछे की तरफ़ था। दिल में एक टीस सी उठ रही थी और एक चुभन सी महसूस हो रही थी: **'क्या अब दोबारा यह देखना नसीब होगा?'** यह वह कसक है जो हर जायरीन को तड़पाती है। इंसान मक्का छोड़ देता है, मगर उसका दिल वहीं हरम के सहन में कहीं जमजम के कुएँ और काबा के साये के बीच छूट जाता है।

15- कबूलियत की गूँज और ठंडी हवा का झोंका

12 और 13 जून की वह दर्मियानी रात थी, जब मैं पूरे 45 दिन बाद अपने वतन, अपने घर वापस लौट चुका था। जिस्म सफ़र की थकान से चूर था, मगर रूह अब भी अ़राफ़ात के उस मैदान और हरम की उन गलियों में बसी थी, जहाँ हम सब ने मिलकर ग़ज़ा के मज़लूमों के लिए रो–रो कर दुआएँ माँगी थीं।

मेरा यकीन था कि मज़लूम की आह और अल्लाह के अर्श के बीच कोई पर्दा नहीं होता, मगर कुदरत अपना जवाब इतनी जल्दी दिखाएगी, इसका अंदाजा न था। अभी घर लौटे कुछ ही घंटे गुजरे थे कि खबर आई – इजराइल ने ईरान पर हमला करके खुद अपनी शामत को दावत दे दी है।

अ़राफ़ात के मैदान में जो सिसकियाँ और जो शिकायतें हमने अपने रब के हुजूर दर्ज कराई थीं, ऐसा महसूस हुआ कि कुदरत ने उनके जवाब का सिलसिला शुरू कर दिया है। अगले कुछ दिनों में जो मंज़र दुनिया ने देखा, वह जालिम के गुरूर के टूटने की शुरुआत थी।

हालाँकि, यह बदला उन बेगुनाहों पर हुए इजराइली जुल्म के मुकाबले हजारवाँ हिस्सा भी नहीं था, लेकिन फिर भी मेरे दिल को एक अजब तस्कीन थी। इजराइल की वह पिटाई और वह खौफ, जिसे पूरी दुनिया ने देखा, उसने मेरे जैसे लाखों हाजियों–करोड़ों मोमिनों के जख्मी दिलों पर मरहम का काम किया। ऐसा लगा मानो तपते हुए सहरा में अचानक ठंडी हवा का कोई हल्का सा झोंका आ गया हो।

वह दुआएँ, जो अ़राफ़ात की रेत में जज्ब हुई थीं, अब हकीकत बनकर उभर रही थीं। मज़लूमों के हक में उठी उन

आवाजों ने शायद अर्श को हिला दिया था। भले ही यह जालिम के जुल्म का पूरा हिसाब न था, मगर इसने साबित कर दिया कि मज़लूम बेसहारा नहीं है, उसका वली अल्लाह है।

मेरा हज तब शुरू हुआ था जब मैंने ग़ज़ा के लिए हाथ उठाए थे, और मेरा हज तब मुकम्मल हुआ जब मैंने उन दुआओं के असर को अपनी आँखों से देखा। यह सफ़रनामा महज़ एक मुसाफ़िर की डायरी नहीं, बल्कि एक मोमिन के यकीन की जीत है।

''आज भी हो जो बराहीम का ईमाँ पैदा
आग कर सकती है अंदाज-ए-गुलिस्ताँ पैदा''

''देख कर रंग-ए-चमन हो न परेशाँ माली
कौकब-ए-गुंचा से शाखें हैं चमकने वाली''

''खस-ओ-खाशाक से होता है गुलिस्ताँ खाली
गुल-बर-अंदाज है खून-ए-शोहदा की लाली''

''रंग गर्दूं का जरा देख तो उन्नाबी है
ये निकलते हुए सूरज की उफक-ताबी है''

16- कुछ मशवरे मेरी निगाह में :

हमारे मुल्क और बिल–खुसूस पूरे बर्रे–सगीर में ये तसव्वुर आम है कि हज पर आने वाला ज़्यादातर मुसाफ़िर खुद को **''चुने हुए लोगों''** में शुमार करने लगता है। खास तौर पर ख्वातीन में ये बात जोरों पर है कि हतीम में कियाम, हजर–ए–असवद का बोसा या कुछ मख्सूस वजाइफ पढ़ लेने से बख्शिश की कोई **''गारंटी''** मिल जाएगी। शायद हमारे उलेमा और मौलवियों ने भी इसी किस्म की जाहिरी इबादतों पर इतना जोर दिया है कि लोग दीन की असल रूह को भूल बैठे हैं।

मेरे कमरे में मेरे ही शहर की एक हम–उम्र फैमिली ठहरी हुई थी। एक दिन उन मोहतरमा ने अपने शौहर को बड़ी ताकीद के साथ कुछ वजीफे और दुआएं बताते हुए कहा, "आज हरम में इतनी–इतनी मर्तबा ये पढ़ कर अपनी मगफिरत करा लेना!"

उनकी इस मासूमियत भरी बात पर मुझे हँसी भी आई और थोड़ी हैरत भी हुई। मैंने मुस्कुरा कर कहा, "क्या मगफिरत की भी कोई ऐसी स्कीम आई है?"

दरअसल, हमने अल्लाह की रहमत को महज़ गिनती के चंद वजीफों में महदूद कर दिया है। हम ये भूल जाते हैं कि वहाँ मगफिरत कराने नहीं, बल्कि **''मग़फ़िरत की भीख माँगने''** जाना है। ये कोई लेन–देन का मामला नहीं, बल्कि तौबा और बंदगी का मुकाम है। इंसान जब तक अपने नफ्स के तकब्बुर को नहीं तोड़ता, महज़ हजर–ए–असवद को बोसा देने या गिनती के वजीफे पढ़ने से बात नहीं बनती।

रह गई रस्म-ए-अजाँ, रूह-ए-बिलाली न रही,
फलसफा रह गया, तल्कीन-ए-गजाली न रही।

एक अहम मुशाहिदाः

हरम–ए–पाक में एक अजीब मंज़र देखने को मिलता है। लोग हजर–ए–असवद का बोसा लेने या हतीम के अंदर नमाज पढ़ने के लिए इस कदर बेताब होते हैं कि दूसरों को धक्के देने, कोहनियाँ मारने और तकलीफ पहुँचाने से भी गुरेज नहीं करते। ये एक लम्हा–ए–फिक्रिया (सोचने की बात) है कि हम एक 'मुस्तहब' अमल को पूरा करने के लिए एक 'वाजिब' हुक्म की धज्जियाँ उड़ा देते हैं।

किसी मोमिन का दिल दुखाना या उसे जिस्मानी तकलीफ पहुँचाना गुनाह है। कितनी अजीब बात है कि इंसान एक हाथ से गुनाह कर रहा है और दूसरे हाथ से सवाब की उम्मीद रख रहा है। क्या ये मुमकिन है कि हम अल्लाह के बंदों को तकलीफ पहुँचा करके अल्लाह की रजा ह़ासिल कर लें?

हतीम में दाख़िल होना और वहाँ सजदा करना बेशक सआ़दत है, मगर उस सजदे की रूह क्या है? अगर उस सजदे के पीछे किसी ज़ईफ़ मुसाफ़िर की सिसकी या किसी कमजोर इंसान का धक्का शामिल है, तो क्या वो इ़बादत अपनी असल रूह खो नहीं देती?

तसव्वुर ये होना चाहिए कि हरम की हुदूद में हम सबसे छोटे और सबसे आ़ज़िज़ (humble) बनकर रहें। बोसा मिल जाए तो नसीब, और अगर भीड़ की वजह से न मिल सके तो दूर से इशारा (इस्तिलाम) कर लेना भी उसी सुन्नत का हिस्सा है। **इ़बादत जबरदस्ती छीनने का नाम नहीं, बल्कि ख़ुद को सुपुर्द–ए–खाक (surrender) कर देने का नाम है।**

लोग मक्का पहुँचकर एक के बाद एक कई उमरा करने की 'होड़' में लग जाते हैं। मस्जिद–ए–आयशा के चक्कर बहुत लगते हैं, **जिस वजह से** हरम में बैठकर काबा के दीदार और तवाफ़ करने का वक़्त कम हो जाता है। काबा के दीदार में जो लज़्ज़त और रूहानी सुकून है, वह लफ़्ज़ों में बयां नहीं किया जा सकता। यह वह मंज़र है जिसके लिए इंसान बरसों तड़पता है।

हर लम्हे को कीमती समझें और इस दीदार का भरपूर लुत्फ लें। अपने दिल में यह खयाल रखें कि शायद फिर कभी ऐसा मौक़ा मयस्सर हो या न हो।

इबादत की रूह और हमारी बे–सब्री

मदीना पहुँचते ही एक बात दिल को कचोटने लगी। होटल की उन चार लिफ्टों के सामने सामान को कमरों तक पहुँचाने की जो अंधी दौड़ मैंने देखी, उसने मुझे सोच में डाल दिया। हर शख़्स इस ललक में था कि बस 'मैं' पहले पहुँच जाऊँ। यही मंज़र मदीना से रुखसत होते वक़्त भी रहा लोडर तक अपना सामान पहले पहुँचाने की वह अजीब हड़बड़ी और बे–सब्री, जैसे कोई जंग जीतनी हो। जबकि हकीकत यह थी कि हर मुसाफ़िर और उसके सामान को साथ लिए बिना कारवाँ को आगे बढ़ना ही न था।

अज़ीज़िया की मस्जिद–ए–महफ़ूज़ के पास भी हाजियों का यही हाल दिखा। बाद में मस्जिद आने वालों के लिए जगह देने में वही अजीब सी बेरुखी और तल्खी नज़र आई। उस वक़्त दिल ने तड़प कर सवाल किया – क्या हम यहाँ इस्लाम के पाँचवें रुक्न की अदायगी के लिए जमा हुए हैं?

बड़ा अफसोस होता है यह सोचकर कि हमने हज को सिर्फ़ काबा के गिर्द चक्कर लगाने, सफा–ओ–मरवा के बीच दौड़ने और जमरात की दीवारों पर कंकड़ मारने तक महदूद कर दिया है। हमने मनासिक–ए–हज को तो रट लिया, मगर उस **'रूह'** से बे–जार रहे जो हमें इंसानियत, ईसार (दूसरों को तरजीह देना) और सब्र सिखाती थी।

<u>हजः इबादत या गुनाहों पर पर्दा? एक कड़वा सचः</u>

बर्रे–सगीर के मुसलमानों का लेन–देन और अख़लाक़ी रवैया जग–जाहिर है, और मैं भी इसी मुआशरे का हिस्सा हूँ। यहाँ दीनदारी का एक अजीब मेयार (standard) बन चुका है। लोग उम्र भर बहनों का हिस्सा दबाते हैं, कारोबार में पार्टनर को धोखा देते हैं और सरकारी मुलाजमत में रिश्वत की कमाई से अपने घर भरते हैं। फिर रिटायरमेंट के बाद या बुढ़ापे की दहलीज पर पहुँचकर दाढ़ी रख लेते हैं और बीवी समेत 7–8 लाख रुपये लगा कर हज कर आते हैं। तसव्वुर ये होता है कि बरसों की बे–ईमानी, हराम कमाई और अपनों का हक मारने का सारा मामला इन चंद लाख रुपयों और मक्का की हाज़िरी से निपट जाएगा। वो समझते हैं कि अब वो **'नौ-मौलूद'** (नवजात बच्चे) की तरह पाक–साफ़ होकर आए हैं और समाज में **'हाजी साहब'** बनकर इतराते फिरते हैं।

हकीकत ये है कि अल्लाह तआला 'हुकूक़–उल–इबाद' (बंदों के हक) के मामले में बहुत सख़्त है। जब तक उस बहन को उसका हक नहीं मिलेगा जिसका हिस्सा खाया गया है, या उस पार्टनर की तलाफी नहीं होगी जिसका नुकसान किया गया

है, तब तक महज़ काबा के चक्कर लगाने से रूह पाक नहीं होती।

हज गुनाहों से पाक होने का नाम है, मगर उन गुनाहों से जो अल्लाह और बंदे के बीच हैं। जो ज़्यादतियाँ इंसानों के साथ की गई हैं, उनका हिसाब यहीं ज़मीन पर चुकता करना होगा। हमने हज को अल्लाह के साथ एक 'लेन–देन' की स्कीम बना लिया है, जबकि ये तो अपने नफ्स को मिटाने और दूसरों के हुकूक़ अदा करने का अहद (promise) है।

सफ़र की हिकमत : इबादत या सामान का बोझ?

मेरे तजुर्बे का एक मशवरा :

हज के दौरान अक्सर जायरीन एक बड़ी गलती करते हैं। चाहे आप पहले मदीना जाएँ या मक्का, लोग शुरू के दिनों में ही खरीददारी शुरू कर देते हैं। खास तौर पर मदीना मुनव्वरा में ये सोचकर खजूरें खरीद ली जाती हैं कि यहाँ सस्ती मिल रही हैं। महज़ 2–4 हजार रुपये की इस सौदाबाज़ी के चक्कर में आप उस बड़े मक़सद को बद–मजा कर देते हैं जिसके लिए आप यहाँ आए हैं। सामान की गठरियों का बोझ लादे हुए मदीना से मक्का का सफ़र करना निहायत तकलीफ़देह होता है। फिर मक्का पहुँच कर उन खजूरों को खराब होने से बचाने के लिए सामान खोलकर हवा दिखाते फिरना, इबादत के वक़्त को जाया करना है।

मेरी राय में सही तरीका :

आम तौर पर पहली फ़्लाइट वालों की वतन वापसी भी 15 या 16 ज़िलहिज्जा से पहले शुरू नहीं होती। हज के अरकान

से फ़ारिग़ होने के बाद आपके पास आराम से 2–3 दिन का वक़्त बचता है। उस वक़्त सुकून से खजूरें और दीगर सामान खरीदें।

हज को 'इबादत का मेहवर' बनाएँ, न कि बाज़ार का। सामान का बोझ जितना कम होगा, रूह का बोझ भी उतना ही हल्का महसूस होगा और आप अपना सारा ध्यान अल्लाह की याद में लगा सकेंगे।

एक आख़िरी बात -

सफ़र–ए–हज एक बेहद खूबसूरत और रूहानी तजुर्बा है, जिसकी लज़्ज़त और कैफ़ियत सिर्फ़ वही महसूस कर सकता है जिसे इस मुक़द्दस सफ़र की सआदत हासिल हुई हो। यह इस्लाम के पाँच बुनियादी अरकान में से एक अ़ज़ीम फ़र्ज़ है। मगर अल्लाह तआ़ला ने हर शख़्स को इस सफ़र के लिए मजबूर नहीं किया यह सिर्फ़ उन पर फ़र्ज़ है जो साहिब–ए–इस्तताअत हैं – जिनके पास जाद–ए–राह (सफ़र का खर्च) हो, पीछे अहल–ओ–अ़याल (परिवार) के लिए मुकम्मल इंतजाम हो और जिस्म में सफ़र की सकत हो।

आज के दौर में, पिछले 20–25 सालों में सहूलियतों के बढ़ने से यह सफ़र अब ज़ईफ़ (बुजुर्ग) और माजूर लोगों के लिए भी आसान हो गया है। यहाँ मेरा एक मशवरा है; जो लोग आज साहिब–ए–हैसियत हैं और जिन्हें अपने वालिदैन की तरफ़ से विरासत में इतना माल मिला है कि उससे आसानी से ह़ज किया जा सके, उन्हें ग़ौर करना चाहिए। अगर उनके मरहूम वालिदैन अपनी ज़िंदगी में किसी मजबूरी की वजह से ह़ज न कर सके हों, तो वारिसों का यह अख़लाक़ी फ़र्ज़ बनता है कि उस विरासत

के माल से सबसे पहले अपने वालिदैन का यह क़र्ज़ अदा करें। जब हम उनके छोड़े हुए असासों (Assets) के मालिक बनते हैं, तो उनकी अधूरी ज़िम्मेदारियों का बोझ भी हमारे ही कंधों पर आता है।

अल्लाह हम सबको अपने वालिदैन के हुक़ूक़ और उनके अधूरे नेक कामों को पूरा करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए। (बाक़ी इस मसले की बारीकियाँ अपने–अपने उलमा–ए–किराम से ज़रूर समझ लें।)

मस्जिद–ए–निमराह (अराफात)

मस्जिद–ए–मशअरिल हराम (मुज़दलफ़ा)

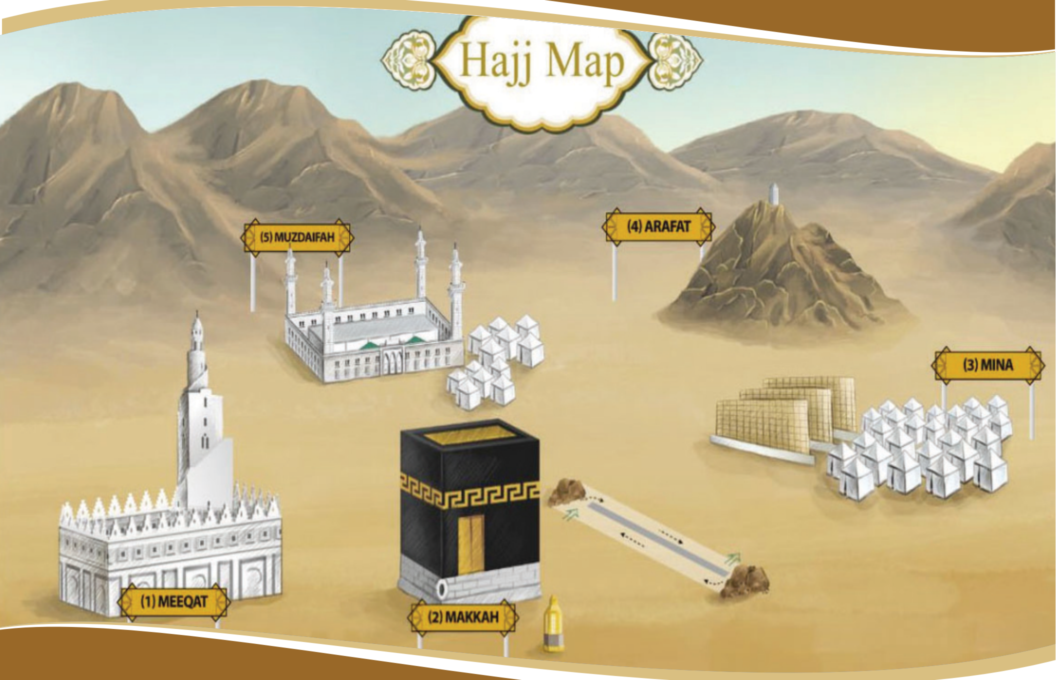

किताब के लिये राबता करें :

- **RAYEE BOOK DEPOT,** Katra Allahabad (Prayagraj), Mob. 76685 49370, Email- makamaltc@gmail.com
- **MAKTABA AHSAN**, Lucknow, Mob. : 9335982413
- **AL-NAZRAH PUBLICATION,** University Circle, Aligarh, Mob. : 9557038250

AL-NAZRAH PUBLICATION
University Circle, Aligarh